विश्वमित्र (मासिक) - दिसंबर -1941

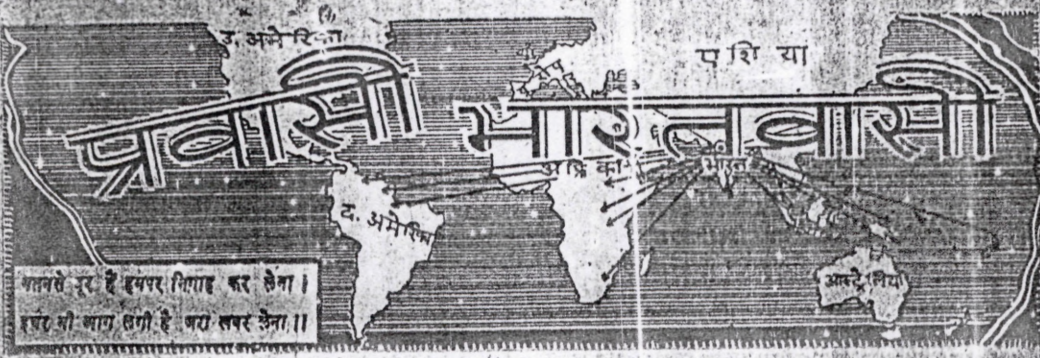

स्वामी भवानीदयालजीका शुभागमन !

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि स्वामी भवानीदयालजी दक्षिण अफ्रीकासे लौटकर स्वदेश आ गये। स्वामीजीका जीवन सेवा और त्यागका जीवन है। आपने प्रवासी भाइयोंकी, विशेषकर दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भाइयोंकी सेवामें जीवनकी सम्पूर्ण शक्तियोंका उपयोग किया है। अपने इस सेवा-कार्यके सिलसिलेमें स्वामीजी प्रायः आते-जाते रहते थे, परन्तु अधिक प्रसन्नताका विषय यह है कि अब स्वामीजी स्थायी रूपसे स्वदेशमें ही रहेंगे और यहां रहकर वे दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भाइयोंकी शिकायतों और आवश्यकताओंकी ओर स्वदेश-भाइयों और भारत-सरकारका ध्यान आकर्षित करेंगे और यह प्रयत्न करेंगे कि उन शिकायतों और आवश्यकताओंके सम्बन्धमें भारतीय लोकमत प्रभावशाली बने और भारत-सरकार भी अपने प्रभावका पूरा-पूरा उपयोग करे। स्वदेशमें स्वामीजी प्रवासी भवन, आदर्श नगर, अजमेरमें रहेंगे और प्रवासी भारतीय साहित्यकी रचना करेंगे; परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण जो कार्य स्वामीजी करना चाहते हैं, वह है कुछ सुशिक्षित नौजवानोंको प्रवासी भारतीयों सम्बन्धी कार्यकी शिक्षा देना और इस तरह निरन्तर यह कार्य होते रहनेकी सुदृढ़ नींव डालना। हमें आशा है, स्वामीजीको सेवाव्रती युवकोंका सहयोग मिलेगा। प्रवासी भाइयोंकी सेवाके लिए यह देशके कुछ नवयुवकोंके सामने अलभ्य अवसर है।

अवस्थामें कोई परिवर्तन नहीं

दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति स्वामी भवानीदयालजीके शब्दोंमें "अमानुषिक कष्टों और अपमानकी कहानी है।" रङ्ग-भेद बड़े ही कटु रूपमें विद्यमान है और कितने ही कानून हैं, जिन्होंने प्रवासी हिन्दुस्तानियोंको यूनियन सरकारके यूरोपीय प्रजाजनोंके मुकाबिलेमें हीन, अयोग्य ठहरा दिया है। पहले यह समझा गया था कि जब तक युद्ध होता रहेगा, शान्ति रहेगी। मार्शल स्मट्सकी सरकार बन जानेसे इसकी और भी आशा हुई थी, परन्तु यह नहीं हुआ। कुछ हिन्दुस्तानियोंने यूनियन सरकारको यह आश्वासन दिया था कि यूरोपियन बस्तियोंमें कोई हिन्दुस्तानी जमीन नहीं खरीदेगा। इसका सीधा-सा अर्थ था अलग बसनेके सिद्धान्तको स्वीकार करना। इसीलिए हिन्दुस्तानियोंने इसका विरोध किया; परन्तु बादमें आश्वासनको पूरा करनेके लिए एक कमेटी बना दी। इस कमेटीको काम करनेका अवसर भी नहीं मिला था कि यूरोपियनोंने प्रवासी हिन्दुस्तानियोंके यूरोपियन क्षेत्रोंमें बहुत ज्यादा हो जानेका हल्ला किया और यूनियन सरकारने जस्टिस ब्रूमकी अध्यक्षतामें एक कमीशन नियुक्त कर दिया। कमीशनको यह पता लगाना था कि ट्रान्सवाल और नेटालमें १ जनवरी १९२७ से इधर मुख्यतः यूरोपियन बस्तियोंमें प्रवासी भारतीयोंका प्रवेश क्यों और कितना हुआ। इस कमीशनकी रिपोर्ट अब प्रकाशित हो गयी है। रिपोर्टमें स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा गया है कि "१९२७ से इधर ट्रान्सवालमें प्रवासी भारतीयोंका प्रवेश इतना नहीं हुआ है कि उसपर किसीको आश्चर्य हो और नेटालमें भी स्थिति चिन्ताजनक नहीं मालूम होती।"

इस सम्बन्धमें स्वामी भवानीदयालजीने कहा है—"सिद्धान्ततः हमने अलग बसनेका विरोध हमेशा ही किया है। फिर भी, कोई भी व्यक्ति यह पसन्द नहीं कर सकता कि

उसे वैसी...
किया जा...
करना कि...
हिन्दुस्तानि...
बसा लिये...
स्तानी ब...
हिन्दुस्तानि...
हिन्दुस्तानि...
नेटाल...
गत सितम्ब...
बतलाया कि...
हिन्दुस्तानि...
समझौतेपर...
साथ ही यह...
नियुक्त करे...
भारतीय...
भी "दक्षिण...
परिवर्तन नहीं...
यूरो...
जस्टिस...
उसका सारांश...
जिनमेंसे लग...
हैं। ये सब...
कोई व्यापारि...
ठिक नहीं सक...
इधर ट्रान्सवाल...
पारिक और...
नहीं जाहिर...
अनुसार...
संख्यामें १९३२...
अधिक वृद्धि न...
समयके लिए...
हिन्दुस्तानियों...
पियनोंके साथ...
साथ जाकर रह...
कि यूरोपियन...

उसे ऐसी किसी जगहमें अलग रहना पड़े, जहां उसका विरोध किया जाता हो। अपने प्रति अपने पड़ोसीकी घृणाको बर्दाश्त करना किसी मनुष्यके लिए सहज नहीं है और वास्तवमें हिन्दुस्तानियोंने डरबनमें और इसके आसपास अपने मुहल्ले बसा लिये हैं। म्युनिसिपैलिटीके अधिकारी इन हिन्दुस्तानी बस्तियोंकी बिलकुल उपेक्षा करते हैं और दोषी हिन्दुस्तानियोंको ठहराया जाता है, क्योंकि कितने ही हिन्दुस्तानियोंको गन्दे स्थानोंमें रहना स्वीकार नहीं है।''

नेटाल इण्डियन कांग्रेसके तृतीय अधिवेशनके प्रेसिडेण्टने गत सितम्बरमें अपने भाषणमें कहा था—''हमने कमीशनको बतलाया कि यह यूनियन सरकारका मखौल ही है कि हिन्दुस्तानियोंसे तो यह आशा की जाय कि वे केपटाउनवाले समझौतेपर दृढ़ रहकर यूरोपियन ढङ्गके जीवनको अपनायें, साथ ही वह इस बातकी जांचके लिए एक कमीशन भी नियुक्त करे कि हिन्दुस्तानियोंने कितनी प्रगति की है।''

भारतीय हाई कमिश्नरकी १९४० की रिपोर्टके अनुसार भी ''दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतीयोंकी अवस्थामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।''

यूरोपियन क्षेत्रोंमें हिन्दुस्तानी

जस्टिस ब्रूमकी जिस रिपोर्टका उल्लेख किया गया है, उसका सारांश यह है—ट्रान्सवालमें २८२०० हिन्दुस्तानी हैं, जिनमेंसे लगभग आधे या कुछ कम 'निश्चित क्षेत्र' में रहते हैं। ये सब अपनी जीविकाके लिए व्यापारपर निर्भर हैं। कोई व्यापारी केवल अपने ही वर्गके साथ व्यापार कर टिक नहीं सकता। इस परिस्थितिमें १ जनवरी १९२७ से बाद ट्रान्सवालमें मुख्य रूपसे यूरोपियन क्षेत्रोंमें २४६ व्यापारिक और ९३ निवास-स्थानोंको हस्तगत कर लेनेसे यह नहीं जाहिर होता कि स्थिति सङ्कटपूर्ण है। [illegible] कमीशनके अनुसार एशियाइयोंके व्यापारिक लाइसेन्सोंकी संख्यामें १९३२-३९ में उनकी जनसंख्या-वृद्धिके अनुपातसे अधिक वृद्धि नहीं हुई और यही निष्कर्ष १९[illegible]७-४० के समयके लिए भी निकाला जा सकता है। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंमें आम तौरसे यह इच्छा नहीं है कि वे यूरोपियनोंके साथ जाकर रहें; परन्तु जहां कहीं वे यूरोपियनोंके साथ जाकर रहने लगे हैं, वहां उसका कारण यह हुआ है कि यूरोपियन क्षेत्रोंमें व्यापार-सम्बन्धी अवसर अच्छे हैं

स्वामी भवानीदयालजी।

और रहनेकी परिस्थिति भी अच्छी है। यह कहना ठीक नहीं है कि सरकार कानूनी प्रतिबन्धोंको कार्यान्वित नहीं कर सकी, इसीलिए यूरोपियन क्षेत्रोंमें हिन्दुस्तानी बस गये। अघोषित क्षेत्रोंमें जहां हिन्दुस्तानियोंने मकान या दूकानें ली हैं, वहां कोई कानून तोड़कर नहीं ली हैं और कोई कानूनी प्रतिबन्ध इसमें बाधक नहीं हो सकता था। हिन्दुस्तानियोंके आनेसे यूरोपियन क्षेत्रोंके यूरोपियन स्थान छोड़ रहे हैं, यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि यूरोपियनोंने तो उन स्थानोंको पहले ही छोड़ दिया था, हिन्दुस्तानियोंके आनेसे उन्होंने नहीं छोड़ा। १९२७ का केपटाउन समझौता हिन्दुस्तानियोंको यूरोपियन ढङ्गसे रहनेके लिए [illegible] देता है और इस रूपमें उसने ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंको यूरोपियन क्षेत्रोंमें घुसनेमें सहायता पहुंचायी [illegible] इसका मुख्य कारण हिन्दुस्तानियोंमें धन कमानेकी इच्छा [illegible] और यह इच्छा सबकी होती है।

नेटालके उत्तरी जिलोंमें हिन्दुस्तानियोंके [illegible] कानूनी प्रतिबन्ध है। रिपोर्टमें वहांके सम्बन्धमें लिखा गया है—''यूरोपियन क्षेत्रोंमें १९२७ से उधरके भारतीय प्रवेशको यदि बाढ़ कहा जाय, तो इधरका प्रवेश एक [illegible]—

प्रति वर्ष २३ और खेतीकी जमीनको भी जोड़ लिया जाय, तो २९। शहरमें ९१२ ऐसे स्थान हैं, जिन्हें हिन्दुस्तानियोंने हस्तगत कर लिया है, दखल केवल १५० स्थानोंपर ही किया है। जिन दूकानोंको हिन्दुस्तानियोंने हस्तगत किया है, उनकी संख्या नगण्य है। हिन्दुस्तानियोंके इस प्रवेशका कारण है—अन्य कामोंमें रकम लगानेके लिए गुञ्जायश नहीं है, इसलिए हिन्दुस्तानियोंने अचल सम्पत्तिमें अपनी रकम लगायी।"

इस रिपोर्टके सम्बन्धमें माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीने अपना मत प्रकट करते हुए कहा था—"दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतीयोंके इतिहासमें अक्सर जांचसे ऐसी बातोंका पता चला है, जिनसे यूरोपियनोंके हिन्दुस्तानियोंसे द्वेष रखनेमें औचित्य नहीं सिद्ध होता। यह द्वेष-भाव जांचकर निकाले हुए निष्कर्षोंसे अधिक तो रङ्ग-भेद सम्बन्धी पक्षपात और आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता से होता है। जिस आपत्तिके कारण यह कमीशन नियुक्त किया गया था, उसका अन्त हो गया, यह समझना भूल होगी। दक्षिण अफ्रीकामें यूरोपियन निःसङ्कोच वास्तविक बातोंको अस्वीकार कर देते हैं। मैं उत्तेजनावादी नहीं हूं; परन्तु मुझे यह आशा नहीं है कि हिन्दुस्तानी प्रसन्न हो सकते हैं।"

दुःखजनक बेबसी

मलाया प्रवासी भारतीयोंकी संख्या लगभग ७॥ लाख है। उनके अधिकारोंके सम्बन्धमें उस दिन स्टेट कौंसिलमें [illegible] हृदयनाथ कुंजरूने प्रस्ताव रखा और यह अनुरोध किया कि भारत-सरकार उन्हें ज्यादा मजदूरी दिये जानेके प्रयत्नोंमें सहायता पहुंचाये, तब सरकारकी ओरसे प्रवासी विभागके सेक्रेटरी मि० जी० एस० बोजमेनने बतलाया कि गत मईमें वहां हिन्दुस्तानी मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। उस समय गोली चलाये जानेसे ९ आदमी मारे गये और और ६० न्यूनाधिक चिन्ताजनक रूपमें घायल हुए। भारत-सरकारने ब्रिटिश सरकारके औपनिवेशिक विभागके अधिकारियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि हड़तालके कारणोंकी जांच होनेकी जरूरत है और यदि हिन्दुस्तानी मजदूरोंको अधिक संख्यामें निर्वासित किया गया, तो उसका काफी औचित्य दिखलाना होगा। परन्तु अभी तक इस सलाहको औपनिवेशिक विभागके अधिकारियोंने स्वीकार नहीं किया है। यह हमारी बेबसीका, ब्रिटिश-सरकारके औपनिवेशिक विभागकी कृपापर निर्भर होनेका और उसके द्वारा हमारी साधारण-सी मांगकी उपेक्षा किये जानेका अन्यतम उदाहरण है।

मलायामें हिन्दुस्तानियोंकी अवस्था बड़ी शोचनीय है। हम इस बातसे सहमत नहीं हैं कि नागरिकताके अधिकारोंकी दृष्टिसे राजनीतिक भेद-भावका प्रश्न इसलिए नहीं उठता कि वहां मताधिकार नहीं है। मताधिकार होनेसे ही क्या, सरकारी नौकरियां तो हैं। मलायामें उच्च पदोंका द्वार हिन्दुस्तानियोंके लिए बन्द कर रखा गया है। मलाया प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी मजदूरीके प्रश्नका इतिहास [illegible] साल पुराना है। रबड़का बाजार गिर जानेसे १९३० में हिन्दुस्तानियोंकी मजदूरी २० प्रतिशत कम कर दी गयी। इसपर हिन्दुस्तानी मजदूरोंका मलाया जाना बन्द कर दिया गया; परन्तु ४ वर्ष बाद १९३४ में हिन्दुस्तानी मजदूरोंके वहां जानेके लिए फिर द्वार खोल दिया गया। १९३६ में माननीय श्रीनिवासजी शास्त्रीने मलाया जाकर स्थितिका अध्ययन किया। वातावरण अच्छा बनानेके लिए उसी समय मलाया सरकारने १९३० वाली कटौती जारी रहने दी और रबड़के जमींदारोंने भी मजदूरोंकी दर बढ़ाकर पुरुषोंके लिए ४५ सेण्ट और स्त्रियोंके लिए ३६ सेण्ट कर दी; परन्तु मलाया प्रवासी हिन्दुस्तानियोंमें असन्तोष ही रहा। माननीय शास्त्रीने अपनी रिपोर्टमें १९२८ वाली दरसे मजदूरी दिये जानेकी सिफारिश की और मलायाकी सरकारने भी काफी लिखा-पढ़ीके बाद पुरुषोंको ५० सेण्ट और स्त्रियोंको ४० सेण्ट देना स्वीकार कर लिया; परन्तु एक साल बाद १९३८ में इसमें फिर १० प्रतिशत कमी कर दी और इधर भारत-सरकारने हिन्दुस्तानी मजदूरोंका वहां जाना बन्द कर दिया। सितम्बर १९३९ में युद्ध आरम्भ हो जानेपर जब रबड़का बाजार चढ़ गया, फिर मजदूरीकी दर बढ़ाकर ५० और ४० सेण्ट कर दी गयी; परन्तु आज मलायाकी अवस्था पहलेसे भिन्न है और भारतीय श्रमजीवियोंमें बड़ा क्षोभ है; क्योंकि न केवल उन्हें भत्ता कम मिल रहा है, चीनी मजदूरोंके मुकाबिलेमें उन्हें मजदूरी भी कम मिल रही है। आज यदि भारत स्वतन्त्र होता, तो मलाया-सरकार इस सम्बन्धमें निश्चय ही दूसरी तरह अपना कर्तव्य पालन करती।

'विश्व[illegible]
हिन्दी-ज[illegible]
बारके लिए [illegible]
'विश्वमित्र' क[illegible]
त्या है। [illegible]
वर्ष पूर्व लोक-[illegible]
जनसाधा और [illegible]
शिलापाओंका [illegible]
जाता है—"का[illegible]
अपने जीवनके इ[illegible]
इस व्रतको निबा[illegible]
की साधना करने[illegible]
अपने अन्य सहयो[illegible]
है—पत्रकार-कला[illegible]
बतलाया है, जि[illegible]
आज विश्वमित्र हि[illegible]
शील पत्रोंमें इसका [illegible]
है। हमेशा ही जन[illegible]
प्रेमपात्र समझा है। [illegible]
विश्वमित्रको इसी [illegible]
साप्ताहिक और मा[illegible]
कलकत्तेसे प्रकाशि[illegible]
दो अन्य संस्करण [illegible]
हो रहे हैं। अभी तक [illegible]
किसी भी भाषाके सं[illegible]

विश्वमित्र (मासिक) - जुलाई - 1940

मजदूरोंकी कुछ समस्यायें

श्री विनयकुमार

भारतके मजदूर-आन्दोलनकी प्रगतिपर विचार करनेके बाद कोई इस निर्णयपर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि भारतमें मजदूर-आन्दोलन अभी काफी कमजोर है, इसीलिए उनकी मांगोंकी उपेक्षा की जाती है। बम्बईकी कपड़ेकी मिलोंमें श्रमीकी हड़ताल और उसका जिस रूपमें अन्त हुआ, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। लाभका सारा अंश हजम कर जानेकी प्रवृत्तिको रोकने और देशमें नवीन आर्थिक प्रणालीकी स्थापनाकी समस्या देशके अर्थ एवं समाज-शास्त्रियोंके सम्मुख है। मजदूर-आन्दोलनका यह एक ऐसा पहलू है, जिसका उत्तरदायित्व मजदूरों और मिल-मालिकोंको छोड़कर अन्योंपर भी है। कितनी ही हड़तालें मजदूर करें अथवा पूंजीपति कितनी ही उदारता दिखायें, इस आन्दोलनकी विशुद्ध आर्थिक समस्याका हल कर सकना उनके लिए कठिन है। पर इन आर्थिक समस्याओंके अतिरिक्त कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं, जो मजदूरोंको पशुवत् जीवन व्यतीत करनेको बाध्य करती हैं और यदि पूंजीपति और मजदूर नेता चाहें, तो बिना किसी प्रकारके संघर्षके उनका सरलतासे हल कर सकते हैं।

विशुद्ध आर्थिक समस्याओंमें मजदूरोंकी इन अवस्थाओंपर भी विचार किया जाना चाहिए:—(१) मजदूरीमें वृद्धि, (२) मजदूरोंके लिए प्राविडेण्ट फण्ड एवं दुर्घटना आदिके समयकी क्षतिकी पूर्ति और (३) सवेतन छुट्टियां।

यदि हम यह कह दें कि भारतमें आजका मजदूर-आन्दोलन आर्थिक समस्याके इन्हीं अङ्गोंके पूर्त्यर्थ है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। भारत संसारमें एक ऐसा देश है, जहां चीनको छोड़कर सबसे कम मजदूरी मजदूरोंको मिलती है। सरकारकी ओरसे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जो मजदूरीकी कमसे कम दर नियत कर सके।

मजदूरोंकी आर्थिक समस्याओंके हल करनेको महत्त्वपूर्ण आन्दोलन हुए हैं और होते रहते हैं। उनमें जितनी शक्तिका व्यय होता है, उतनी सफलता नहीं मिलती। इसके अनेक कारण हैं। इन विशुद्ध आर्थिक समस्याओंके अतिरिक्त मजदूर-आन्दोलनकी कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं, जिनका उद्गम यद्यपि अर्थसे है, तथापि उन्हें इस आन्दोलनकी नैतिक समस्यायें कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके विषयमें न तो मजदूर नेताओंने कोई महत्त्वपूर्ण आन्दोलन किया है, न मजदूरोंने स्वयं ही बहुत अनुभव किया है। वर्तमान मजदूर नेताओंके इन समस्याओंको हाथमें न लेने और महत्त्व न देनेका कारण यह है कि किसी भी पहलूको वे अर्थकी अथवा राजकीय दृष्टिसे ही देखते हैं, नैतिक दृष्टिसे नहीं। इतना सब होनेपर भी यह कहना न होगा कि ये गैर-आर्थिक समस्यायें मजदूरोंकी वर्तमान दुरवस्थाके महत्त्वपूर्ण कारण हैं। उन समस्याओंमें ये मुख्य हैं—(१) मजदूरोंकी भर्ती, (२) ऋणका बोझ!

मजदूरोंकी भर्ती

पूर्व इतिहास—भारतमें कारखानों, खदानों व अन्य स्थानोंमें मजदूरोंकी भर्तीकी वर्तमान प्रणाली आजसे एक शताब्दीसे भी पूर्वसे प्रचलित उस बर्बर कुली-प्रथाका परिवर्तन-मात्र है, जिसके द्वारा विदेशी कम्पनियां भोले-भाले गरीब भारतीयोंको अनेक प्रकारके लालच देकर मजदूरोंके रूपमें भर्ती कर विदेशोंमें खेतीके कामके लिए ले जाती थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके भारतमें आनेके बाद सन् १८३६ में यह कुली-प्रथा—शर्तबन्दी मजदूरी—कानूनन् जायज कर दी गयी। मजदूरोंकी भर्तीकी इस प्रथाको ('Indentured L.bour') 'शर्तबन्दी मजदूरी' प्रथा कहते थे। इस प्रथाका उल्लेख सरकारी रिपोर्टोंमें निम्न प्रकार है:—

"उपनिवेशोंकी सरकारें भारतके मुख्य शहरोंमें अपने एजेण्ट नियुक्त करती थीं, जो मजदूर भर्ती करनेवालोंको नौकर रखते थे। ये नौकर, लोगोंको मजदूर बनकर विदेश जानेको तैयार करते थे और मजिस्ट्रेटके सामने ले जाकर रजिस्टरमें नाम लिखवा देते थे। वे मजदूर बम्बई, कलकत्ता अथवा मद्रास ले जाये जाते थे और वहां एजेण्टोंकी स्वयं-की निगरानीमें रखे जाते थे।"

उपर्युक्त प्रणालीके विषयमें स्व० श्री सी० एफ० एण्ड्रूज-

ने अपनी "इण्डिया एण्ड पेसिफिक" नामक पुस्तकमें जो लिखा है, वह इस प्रथाकी बर्बरता और पाशविकताके दिग्दर्शनके लिए यथेष्ट है :—

"भारतमें मजदूरोंकी भर्तीकी वह सम्पूर्ण प्रथा बहुत बदनाम थी, क्योंकि मजदूर भरती करनेवाले (दलाल) अपने उद्देश्यके पूर्त्यर्थ सब नीच उपायोंका अवलम्बन करते थे और जब एक जिला (जहां वे भरतीका काम करते थे) उनके विरुद्ध बगावत कर देता था, तो वे दूसरे जिलेमें प्रवेश करते थे।" आगे वे लिखते हैं :—

"शर्तबन्दी मजदूर-प्रथाके अन्तर्गत गरीब ग्रामीण मजदूरोंकी दशा अत्यधिक करुणाजनक थी। इस प्रथाके अन्तर्गत काम करनेवाले ग्रामीण मजदूरोंमें आत्महत्याकी संख्या इसका ज्वलन्त प्रमाण है। क्योंकि भारतीय ग्रामोंमें आत्महत्या प्रायः नहीं-सी है।"

भारतीय मजदूरोंको विदेशोंमें गुलाम बनाकर भेजनेकी उपर्युक्त प्रणालीमें सन् १८८३ में कुछ परिवर्तन किया गया था, पर पूर्णरूपेण यह प्रणाली सन् १९२० में बन्द की गयी थी। आज भारतमें भिन्न-भिन्न कारखानों अथवा खदानों या चायकी खेती आदिमें मजदूरोंकी जो भर्ती की जाती है, वहां यद्यपि उपर्युक्त प्रणाली अपने प्रारम्भिक रूपमें नहीं है, पर उसके मूल दो सिद्धान्तों—(१) दलालों द्वारा भर्ती और (२) शर्तबन्दी—मेंसे प्रथम आधारको तो सर्वत्र काममें लाया ही जाता है और आसाम प्रान्तमें तो यूरोपियन कम्पनियों द्वारा की जानेवाली चायकी खेतियोंमें उस पुरानी प्रणालीके दोनों सिद्धान्त आज भी अधिकांश रूपमें काममें लाये जाते हैं।

खदानों, कारखानों अथवा चाय आदिकी खेतीके मालिक मजदूरोंकी भर्ती करनेके लिए ठेकेदार रखते हैं। ये ठेकेदार गांव-गांवमें घूमते हैं और ग्रामीणोंकी गरीबी और कर्ज-समस्याका अनुचित लाभ उठाकर उन्हें शहरकी चटकीली-भड़कीली बातों और अधिक मजदूरीका लालच देकर भर्ती कर लेते हैं। यह ठीक है कि गांवोंकी अपेक्षा उन्हें शहरोंमें अधिक मजदूरी मिलती है, पर उन गरीबोंको शहरके खर्चीले रहन-सहनका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। ठेकेदार अनेक स्थानोंपर उन भावी मजदूरोंको स्वयं कर्ज देकर उनका पिछला कर्ज भी चुका देता है। इस प्रकार दिये गये ऋणको ब्याज सहित वसूल करनेमें बादमें वह जिस निर्दयतासे काम लेता है, वह हृदयको हिला देनेवाली है। इस तरह जो ठेकेदार होता है, उसके दो धन्धे चलते हैं। प्रथम कम्पनीके मालिकसे प्रति मजदूर पीछे दलाली मिल जाती है और इधर मजदूरोंके साथ उनका लेन-देनका व्यापार भी बहुत अच्छी तरहसे चलता है। गरीब देहाती अधिक उजरकी आशासे दलालोंके फन्देमें फंसकर शहरमें आ जाता है और पूरा जीवन केवल उस दलाल द्वारा दिये गये ऋणको ही चुकानेमें व्यतीत कर देता है। इस विषयमें पाठक अन्यत्र दिये गये उदाहरणसे मेरे कथनकी सचाईको जान सकेंगे।

भारतीय मिलोंमें मजदूरोंकी भर्ती 'जाबर' लोग किया करते हैं। उसीके अधीन मजदूर रखने या अलग करनेका काम होता है। वह मजदूर भरती करते समय मजदूरोंसे अपनी पूरी दलाली वसूल करता है। अनेक स्थानोंपर तो जाबर लोग अपनी एक निश्चित दर बना लेते हैं। प्रति मजदूर पीछे उसे १०), १५) या २०) तक मिल जाता है। यदि उसे इकट्ठे १००), २००) की आवश्यकता हो, तो वह १०, १५ मजदूरोंको किसी न किसी बहाने नौकरीसे अलग कर देता है और दूसरे मजदूरोंकी भरतीके समय अपनी मनोवाञ्छित रकम उनसे प्राप्त कर ले सकता है। इस विषयमें श्री जान गुन्थरने अपनी पुस्तक 'इनसाइड एशिया' (Inside Asia) में एक अच्छा उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं :—

"मान लीजिये, आपको नौकरी चाहिए। आप जाबरके पास गये। जाबर आपसे इस प्रकार नौकरी दिलानेके लिए कुछ इनाम चाहेगा। कानपुरमें साधारणतः जाबर २०) लेता है। आपके पास २०) नहीं हैं। परन्तु यह पारितोषिक काम मिलनेके लिए आवश्यक है। अतः आपने २०) उसी जाबरसे उधार ले लिये, जो कि लेन-देनका व्यवसाय भी करता है। उसके बाद आपको खानेके लिए भी कम्पनीके भण्डारसे क्रेडिटपर मिल जायगा, क्योंकि वही जाबर स्टोरकीपर भी है। ब्याजकी साधारण सूद दोअन्नी रुपया मासिक है, जो करीब १५०) सैकड़ा होता है। जाबर यह कभी नहीं चाहेगा कि आप उसका कर्ज चुका दें। वह ब्याजपर ही धनवान होता जाता है।" (पृष्ठ ४२९-३०)

भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें खदानोंमें मजदूरोंकी भर्तीके

...निर्दयतासे काम
...। इस तरह जो ठेकेदार
...यम कम्पनीके मालिकसे
... है और इधर मजदूरोंके
...ो बहुत अच्छी तरहसे
...की आशासे दलालोंके
...और पूरा जीवन केवल
...ही चुकानेमें व्यतीत कर
...दिये गये उदाहरणसे मेरे

...र्ती 'जाबर' लोग किया
...रखने या अलग करनेका
...करते समय मजदूरोंसे
...है। अनेक स्थानोंपर तो
... दर बना लेते हैं। प्रति
...) तक मिल जाता है।
...आवश्यकता हो, तो वह
...ी बहाने नौकरीसे अलग
...ो भरतीके समय, अपनी
...ले सकता है। इस विषय-
...तक 'इनसाइड एशिया'
... उदाहरण दिया है। वे

...ी चाहिए। आप जाबरके
...र नौकरी दिलानेके लिए
...धारणतः जाबर २०) लेता
...न्तु यह पारितोषिक काम
...आपने २०) उसी जाबरसे
... व्यवसाय भी करता है।
... भी कम्पनीके भण्डारसे
...ही जाबर स्टोरकीपर भी
...ी रुपया मासिक है, जो
...ाबर यह कभी नहीं चाहेगा
...यह ब्याजपर ही धनवान
...)
...खदानोंमें मजदूरोंकी भरतीके

[illegible]
करनेके लिए सरदार होते हैं। ये सरदार ग्रामोंमें घूम-घूमकर मजदूर इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार वह सरदार जिन मजदूरोंको इकट्ठा करता है, उन्हींका वह सरदार बन जाता है। उसीके अधीन वे मजदूर काम करते हैं। इस प्रकार मजदूर भरती करनेके लिए उस सरदारकी आवश्यकतानुसार ८), १०) और १२) तक भी प्रति मजदूरके लिए एडवान्स दिया जाता है। इसके सिवा कम्पनियोंसे उसे वेतन या दलाली और मिलती है।

मध्यभारतमें दो, तीन और चार पैसे तक प्रति सप्ताह प्रति मजदूरको उस मुकद्दरको देना होता है, जो उन्हें भरती करता है। आसाममें यूरोपियन कम्पनियोंकी चायकी खेतियोंमें अभी तक भी शर्तबन्दी मजदूरी किसी न किसी रूपमें चलती है। २८ मई सन् १९२९ ब्रिटिश गवर्नमेण्टने एक शाही कमीशनकी नियुक्ति की थी। इस कमीशनने आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी इस शर्तबन्दी मजदूरी-प्रणालीकी जांच कर कुछ सूचनायें दी थीं और उन्हीं सूचनाओंके आधारपर भारत-सरकारने मार्च सन् १९३२ में केन्द्रीय धारा-सभामें एक बिल पेश किया, जो पास होकर अप्रैल सन् १९३३ में अमलमें लाया गया। उक्त कानूनके अनुसार—

(१) लायसन्सशुदा सरदार ही मजदूरोंको भरती करनेका काम कर सकते थे।

(२) १६ वर्षकी अवस्थासे कमके बालक जब तक कि उनके माता-पिता साथ न रहें, भरती नहीं किये जा सकते।

(३) जो मजदूर बाहरसे काम करनेके लिए लाये जाते हैं, उन्हें तीन वर्षके पश्चात् अपने घरोंको जानेका पूरा अधिकार होगा।

(४) तीन वर्षके भीतर भी मजदूर अपने घरको लौट सकेगा, यदि यह बात 'सिद्ध' कर दी जायगी कि उसे कम्पनीकी या व्यक्तिकी ओरसे उचित काम नहीं दिया जाता अथवा उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता अथवा उसकी मजदूरी नियमपूर्वक नहीं दी जाती।

(५) इसके सिवा मजदूरको कानूनन् कभी भी लौटनेका अधिकार है, यदि ठेकेदार अथवा मालिक मजदूरसे मार-पिटाई करे।

[illegible]
में अभी भी यह बर्बर शर्तबन्दी मजदूर-प्रथा प्रचलित है, जिसके विषयमें स्व० गोखलेने कहा था कि "यह प्रथा स्वतः अन्यायपूर्ण है, छल-कपटकी नींवपर स्थित है और बल द्वारा इसका सञ्चालन होता है।"

आसाममें मजदूर-प्रथाके लिए उक्त कानून है। आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंपर होनेवाले अत्याचार भारत-प्रसिद्ध हैं। कानून उस प्रथामें और अधिक बुराइयोंको रोकनेके लिए है, न कि प्रणालीको बदलनेके लिए। गरीब मजदूरके लिए, जिसके पास खानेको पैसा नहीं होता, जो ठेकेदारोंके कर्जसे दबा होता है, यह सम्भव ही नहीं है कि वह कानूनकी शरण लेकर किसी अन्यायको 'सिद्ध' कर, अपने अधिकारोंकी रक्षा कर अपने घर सुरक्षित लौट सके। तीन वर्षके भीतर तो क्या, उसके बाद भी कर्जसे दबे होनेके कारण उन्हें वहीं पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। सन् १९३१-३२ के तद्विषयक अङ्कोंसे प्रतीत होता है कि उस वर्षमें ५०००० से भी अधिक मजदूर आसाममें भरती किये गये और करीब ७५ ठेकेदारोंपर मजदूरोंकी भरती करनेमें अन्याय और अत्याचार करनेके कारण मुकदमे चलाये गये। इन प्रकट मामलोंके अतिरिक्त अप्रकट अनेक अत्याचार होते हैं, जो कानूनकी दृष्टिसे किसी प्रकार बच जाते हैं। मजदूरोंकी भरतीकी यह प्रणाली सिद्धान्ततः ही पाशविक और अनुचित है। उक्त प्रथाके विषयमें श्री सी० एफ० एण्डरूजके ये शब्द हमारे कर्तव्यकी ओर स्पष्ट सङ्केत करते हैं कि "यदि भारतवर्षके शुभ नामको अधिक कलङ्कित होनेसे बचाना हो, तो यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस भ्रष्ट प्रथाको अब एक दिन भी कायम नहीं रखना चाहिए।"

मजदूरोंकी भरतीकी वर्तमान प्रणालीमें मुख्यतः दो बुराइयां हैं, जिनका शीघ्रातिशीघ्र दूर होना आवश्यक है :—

(१) शर्तबन्दी मजदूरी—चाहे आसाममें चायकी खेतीके लिए हो अथवा बिहार और मध्यप्रान्तकी कोयलेकी खदानें हों, कहीं भी इस अवाञ्छनीय प्रथाको रहने न देना चाहिए। मजदूरोंको मानवोचित अधिकारोंसे वञ्चित रख उन्हें पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य करना वास्तवमें न केवल सम्बन्धित सरकार, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्रके लिए कलङ्ककी बात है।

(२) मजदूरोंको भरतीके लिए दलालोंका उपयोग—उक्त प्रणालीसे न केवल मजदूरोंमें ही आर्थिक बुराइयां पैदा होती हैं, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्रको इस घूसखोरीकी प्रथासे अत्यन्त हानि पहुंचती है। जापानी माल संसारके बाजारमें क्यों सस्ता बैठता है, इसके कारणोंका उल्लेख करते हुए जान गुन्थरने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थमें लिखा है कि "दूसरा कारण औद्योगिक क्षेत्रमें ईमानदारीका होना है। जापानी फैक्ट्रीमें घूसखोरी नहीं है, इनाम भी नहीं है और न जाबर या दलाल ही हैं, जिन्हें किसी प्रकार धन देना पड़े।"

राष्ट्रोन्नतिके इस महत्त्वपूर्ण कार्यकी ओर मजदूर नेताओंको ध्यान देना चाहिए। इसमें पूंजीपतियोंका पूर्ण सहयोग भी सरलतासे प्राप्त किया जा सकता है।

२　ऋणका बोझ

मजदूरोंकी आजकी दयनीय अवस्थाके कारणोंमेंसे एक प्रधान कारण उनकी ऋण-समस्या है। शाही कमीशनने मजदूरोंकी ऋण-समस्याके बारेमें लिखते हुए कहा है कि "मजदूरोंकी गरीब स्थितिके कारणोंमें ऋणी बोझ प्रधान है।"

मजदूरोंकी ऋण-समस्याके विषयमें यद्यपि ठीक-ठीक अङ्क प्राप्त नहीं होते, तथापि जो कुछ भी होते हैं, उनपरसे ही यह ज्ञात होता है कि ७० से ७५ फीसदी मजदूर ऋणके बोझसे दबे हुए हैं। बम्बई प्रान्तके तद्विषयक अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि वहां ६० से ७० प्रतिशत मजदूर ऋणी हैं। पञ्जाबमें खेतीमें काम करनेवाले मजदूर भारतमें सबसे अधिक कर्जदार हैं। मद्रास प्रान्तमें भी मजदूर अत्यधिक कर्जदार हैं और यह कहा जाता है कि मजदूरोंका ७५ प्रतिशतसे भी अधिक वेतन "पे-डे" के दिन साहूकारों द्वारा छीन लिया जाता है। मजदूरोंके ऋणकी तादादके विषयमें बम्बई लेबर आफिसके अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि प्रति मजदूरपर औसतन् उसके २॥ मासके वेतनके बराबर ऋण होता है। अहमदाबादमें सन् १९२६ से १९३० तक ६९ प्रतिशत परिवार कर्जदार थे। यों तो सम्पूर्ण भारतीय किसान और मजदूर ऋणके बोझसे दबे हुए हैं; परन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय, तो जितना मजदूरोंका कर्ज उनके लिए दुःखदायी है, उतना किसानोंका कर्ज उनके लिए दुःखदायी नहीं है। मजदूरोंके लिए भी ऋणका बोझ उतना दुःखदायी नहीं होता, जितना कर्जकी वसूलीके तरीके और ब्याजकी दर होती है। किसानोंको कर्ज देने वाले अक्सर अधिक सम्पत्तिशाली सेठ-साहूकार होते हैं। उनकी ब्याजकी दर अनेक मामलोंमें अनुचित नहीं होती। ऋणकी वसूलीके लिए वे कानूनी कार्यवाहीकी शरण लेते हैं। परन्तु मजदूरोंमें लेन-देनका व्यवसाय करनेवाले साधारणतः कम पूंजीवाले और निम्न सामाजिक श्रेणीके लोग होते हैं। कर्जकी वसूलीके लिए वे कानूनी कार्यवाही द्वारा समय और धन नष्ट करना पसन्द नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि १०) का कर्ज लेकर एक मजदूर २४ घण्टेकी परेशानी मोल ले लेता है। मिलके फाटकसे घरके दरवाजे तक वह जहां जाये, अपने पीछे डण्डेवाला पठान हर समय पायेगा। इस विषयमें शाही कमीशनने अपनी रिपोर्टमें लिखा है :—

"बहुत-से साहूकार, जो मजदूरोंपर शिकारकी नाईं तके रहते हैं, न्यायालयकी कार्यवाहीकी अपेक्षा पाशविक शक्तिपर ही निर्भर रहते हैं। उनका न्यायाधीश लाठी ही है, जिससे वे अपील करते हैं। और "पे-डे" के दिन कारखानोंके बाहर अपने कर्जदारोंसे रुपया वसूल करनेके हेतु भूखे शेरकी तरह वे उनपर झपट पड़ते हैं।" [पृष्ठ २३९]

इसका उपाय बताते हुए कमीशनने लिखा है कि "किसी भी कारखानेके पास इस प्रकार कर्ज-वसूलीके हेतु घेरा डाले रखनेको फौजदारी और "कागनिजेबल" अपराध बना देना चाहिए।"

इस विषयमें बङ्गाल और मध्यप्रान्तकी सरकारोंने कुछ कदम उठाया है। बङ्गाल सरकारने सन् १९३४ में "बङ्गाल मजदूर रक्षा कानून" (Bengal Workman's Protection Act, 1934.) नामक कानून पास किया, जिसके अनुसार ऐसे व्यक्तिको, जो किसी कारखाने, खदान, डाक या रेलवे स्टेशनके पास मजदूरोंसे पैसा वसूल करनेके लिए चक्कर काटता हो, ६ मास तककी सजा हो सकती है। बङ्गाल सरकारसे मध्यप्रान्तीय सरकारने एक कदम और आगे बढ़ाया और सन् १९३६ में एक बिल पेश किया, जिसके अनुसार काम करनेके स्थानके सिवा रहनेके स्थानपर भी उसी हेतु चक्कर काटते रहना भी आपत्तिजनक था। सेलेक्ट कमेटीने इस बिलमें कुछ परिवर्तन किया और सन् १९३७ में वह कानून बन गया।

कर्ज-
लिए ब्याजकी
गुन्थरने एक उद
एक मामला हु
दिया गया था
दिया था औ
मजदूरोंके
रुपया प्रति म
एक बहुत ही
हारके और क
जिन लोग
हैं, वे जानते हैं
वत् जीवन व्य
तक कि अपन
हो जाते हैं।
अत्याचार क्य
कार और मज
जा सकता है
लाये जा सकं

अक्सर अधिक
उनकी व्याजकी दर
। ऋणकी वसूलीके लिए
हैं। परन्तु मजदूरोंमें लेन-
णतः कम पूंजीवाले और
हैं। कर्जकी वसूलीके लिए
। और धन नष्ट करना
म यह होता है कि १०)
ण्टेकी परेशानी मोल ले
रवाजे तक वह जहां जाये,
मय पायेगा। इस विषयमें
लेखा है :—
ोंपर शिकारकी नाईं तके
अपेक्षा पाशविक शक्ति-
न्यायाधीश लाठी ही है,
"पे-डे" के दिन कार-
रुपया वसूल करनेके हेतु
ते हैं।" [पृष्ठ २३९]
शनने लिखा है कि "किसी
र्ज-वसूलीके हेतु घेरा डाले
जेबल' अपराध बना देना

यप्रान्तकी सरकारोंने कुछ
ने सन् १९३४ में "बङ्गाल
l Workman's Prote-
कानून पास किया, जिसके
ो कारखाने, खदान, डाक
ा पैसा वसूल करनेके लिए
की सजा हो सकती है।
कारने एक कदम और आगे
ल पेश किया, जिसके अनु-
रहनेके स्थानपर भी उसी
ापत्तिजनक था। सेलेक्ट
किया और सन् १९३७

लिए व्याजकी दर भी असहनीय-सी है। इस विषयमें श्री जान गुन्थरने एक उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं कि "इस प्रकारका एक मामला हुआ है, जिसमें एक व्यक्तिको ११०) का ऋण दिया गया था। उस व्यक्तिने मूलधनपर ५७०) केवल व्याज दिया था और अन्तमें पुलिसने उसमें हस्तक्षेप किया।"

मजदूरोंको दिये जानेवाले कर्जपर दो आना प्रति रुपया प्रति मास अथवा १५०) सैकड़ा सालाना व्याज लेना एक बहुत ही साधारण बात है। इसे सिवा अमानुषिक व्यवहारके और क्या कहा जा सकता है?

जिन लोगोंका मजदूरोंसे कुछ थोड़ा भी सम्बन्ध होता है, वे जानते हैं कि इस कर्जके कारण उन्हें किस प्रकार पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। यहां तक कि अपनी स्त्रियोंकी इज्जत तक भी बचानेमें वे असमर्थ हो जाते हैं। मनुष्यका मनुष्यपर इससे बढ़कर और अधिक अत्याचार क्या हो सकता है? इस विषयमें पूंजीपति, सरकार और मजदूर नेताओंके सङ्गठित प्रयत्नसे कुछ कार्य किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित कुछ उपाय काममें लाये जा सकते हैं :—

स्था करे। उचित व्याजके साथ वह न्यायोचित वक्तसे मासिक वेतनमेंसे पैसा वसूल कर सकता है।

२—सरकार कानून द्वारा लायसेन्स-प्राप्त व्यक्तियोंको ही मजदूरोंको कर्ज देनेका अधिकार दे सकती है। लायसन्स की शर्तोंमें कर्ज-वसूलीके तरीके और व्याजकी दर विषयक साधारण शर्तें ही होनी चाहिए, ताकि वह कुछ लोगोंकी "मोनोप्ली" ही न बन जाय।

३—मजदूर नेता शिक्षा-प्रचार, रात्रि-पाठशालाओं, सभाओं, पोस्टरों और मेजिक लेन्टर्न द्वारा मजदूरोंको मितव्ययतासे लाभ और कर्जकी बुराइयां बताकर कर्ज लेनेकी उनकी आदत तथा अन्य प्रकारके उनमें प्रचलित दुर्व्यसनोंको कम करनेका प्रयत्न करें।

इस दिशामें इस प्रकारके रचनात्मक और ठोस कार्योंसे ही मजदूरोंकी वर्तमान दयनीय अवस्थामें सुधार हो सकता है। क्या यह आशा की जा सकती है कि भारतके पुनर्निर्माणमें मजदूरोंकी महत्त्वपूर्ण समस्याको विस्मृत नहीं किया जायगा?

———

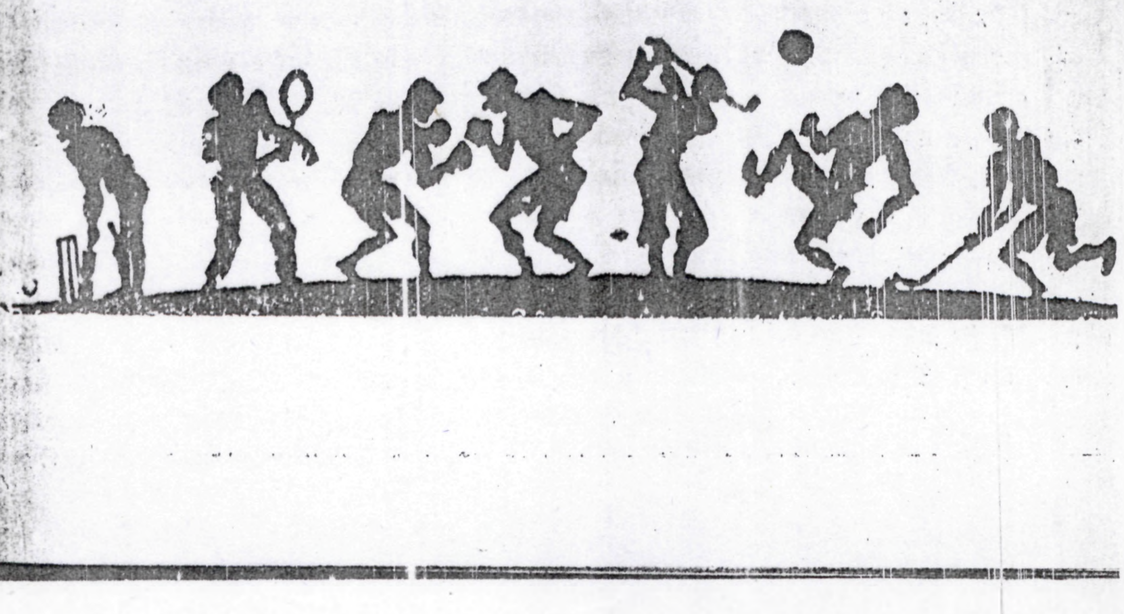

विश्वमित्र-(मासिक)-अक्टूबर, 1937.

...रकार द्वारा दी गयी ...कनेके लिए ही इस ... लाइसेन्स दिया गया ...हम थी। यहां तक कि ... पता चलता है कि ...तब उनकी संख्या कई ...के अनुसार पचास लाखसे ... में आये। यह केवल ...बात यह है कि इतनी ... है।

...शहरोंमें जिस प्रकारके भ्रष्टाचरणको प्रोत्साहन दे रही हैं, उससे वहांकी सरकार इस विषयमें कड़ा कानून बनाने जा रही है, ऐसी घोषणा सरकारने की है। इस प्रथाके अनुसार अभी भी जापानी तरुणियां बिकती हैं और चकलोंकी मालकिनें तरुणियोंको खरीदकर उनके शरीरसे ...। व्यापर करती हैं। ...तना रोमाञ्चकारी है कि ...। इन्हींसे मिलती-जुलती ...नकी संख्या जापान-भरमें ...१६००० थी।

...ओंको वेश्याओंकी श्रेणीमें ...इनकी तो एक श्रेणी ही ...कर विशुद्ध मनोरञ्जन करना ... जापानी सुन्दरियोंकी यह ...खी जाती।

भारतमें औद्योगिक कलह तथा उसके मिटानेके उपाय

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए० एम०काम०

आधुनिक पूंजीवादने समाजके सामने जो बहुत-सी कठिन समस्यायें उपस्थित की हैं, उनमें औद्योगिक कलह (Trade-dispute) अपना एक विशेष स्थान रखता है। आधुनिक कल-कारखानोंके स्थापित होनेके पूर्व अधिकतर छोटे-छोटे कारीगर अपनी झोंपड़ियोंमें अपने शिष्यों (Apprentice) तथा थोड़े-से मजदूरोंके साथ स्वयं माल तैयार किया करते थे। आज भी जहां गृह-उद्योग-धन्धोंका बाहुल्य है, वहां स्थिति ऐसी ही है। साधारणतः कारीगरका उसके शिष्यों और मजदूरोंसे अच्छा व्यवहार रहता है, क्योंकि कारीगर स्वयं उनकी कठिनाइयोंका अनुभव करता है, फिर मजदूर और कारीगरका प्रतिक्षण साथ रहनेके कारण उनमें एक-दूसरेके प्रति सहानुभूति तथा सद्भावनाका तो उदय हो जाना स्वाभाविक ही है। यही नहीं, कारीगर, उसके शिष्यों तथा मजदूरोंकी आर्थिक स्थितिमें इतनी अधिक विषमता भी नहीं होती कि कारीगर मजदूरों तथा शिष्योंका मनमाना शोषण कर सके। परन्तु आधुनिक फैक्टरियों तथा मिलोंमें श्रमजीवियोंकी स्थिति इससे नितान्त भिन्न है, मिल-मालिक तथा श्रमजीवियोंमें कोई सम्पर्क ही नहीं है, मिल-मालिक अपने श्रमजीवियोंकी कठिनाइयोंको अनुभव ही नहीं कर सकते, उनकी आर्थिक स्थितिमें इतनी अधिक विषमता है कि श्रमजीवियोंके हृदयमें मिल-मालिकोंके प्रति सद्भावना उत्पन्न होना नितान्त असम्भव है। जब एक मिल-मालिक अपने राजमहल-सदृश बंगलेमें जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करता है, सुन्दर मोटरकारोंमें चलता है, तब उसके वैभवको देखकर गन्दे झोपड़ोंमें रहनेवाले निर्धन श्रमजीवियोंको भय-मिश्रित कौतूहल हो सकता है; किन्तु श्रद्धा अथवा सद्भावना उत्पन्न नहीं हो सकती।

आधुनिक कारखानोंमें कार्य करनेवाले मजदूरोंका सङ्गठित होना एक स्वाभाविक बात है। जब हजारोंकी संख्यामें मजदूर एक निश्चित समयपर कारखानेके फाटकपर प्रवेश-पत्र (Admit pass) लेनेके लिए एकत्रित होते हैं, कारखानोंमें एक साथ काम करते हैं, दोपहरको एक साथ बैठकर भोजन करते हैं और सायङ्कालको छुट्टी होनेपर एक साथ झुण्डके झुण्ड सड़कपर थके-मांदे अपने गन्दे स्थानोंकी ओर जाते हैं, तब उन्हें स्वभावतः अपनी अवस्थापर विचार-विनिमयका अवसर तो मिल ही जाता है। यदि श्रमजीवी रहते भी एक ही स्थानपर हैं, तब तो उन्हें अपनी स्थितिपर बातचीत करनेकी और भी सुविधा हो जाती है। श्रमजीवियोंके इस प्रकारके जीवनमें ही श्रमजीवी-सङ्गठनके बीज मौजूद हैं। आज पृथ्वीपर जितने भी औद्योगिक राष्ट्र हैं, वहांके श्रमजीवी सङ्गठित हैं, यह दूसरी बात है कि कहीं वे निर्बल हैं और कहीं उनका सङ्गठन अत्यन्त बलवान है।

भारतवर्षमें भी मिलों और फैक्टरियोंकी स्थापनाके उपरान्त श्रमजीवियोंमें सङ्गठनका श्रीगणेश हुआ। परन्तु वस्तुतः यूरोपीय महायुद्धके पूर्व भारतीय श्रमजीवियोंमें वर्ग-चैतन्यका उदय नहीं हुआ था। यूरोपीय महायुद्धके समय भारतवर्षमें ऐसे बहुत-से आर्थिक तथा राजनीतिक कारण उपस्थित हो गये, जिनके द्वारा श्रमजीवियोंमें वर्ग-चैतन्यका उदय हुआ। इस श्रमजीवी-आन्दोलनका मुख्य कारण यूरोपीय महायुद्ध ही था। लाखोंकी संख्यामें भारतीय ग्रामीण पश्चिमीय देशोंमें गये और वहांके मजदूरों और किसानोंकी अवस्थासे अपनी तुलना करनेका उन्हें अवसर मिला, विदेशोंमें बहुत दिनों रहनेके फलस्वरूप उनके विचारोंमें क्रान्ति हुई, उनके लौटनेपर वह विचार-क्रान्ति देशके मजदूरों और किसानोंमें फैली। महायुद्धका समय भारतीय उद्योग-धन्धोंके लिए स्वर्णयुग था। युद्धके कारण इंगलैण्ड, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली, फ्रान्स तथा अन्य राष्ट्र भारतवर्षको अपना तैयार माल भेजनेमें असमर्थ थे। भारतीय मिलें विदेशोंकी प्रतिस्पर्द्धासे बची हुई थीं, प्रत्येक वस्तुका मूल्य कई गुना बढ़ गया था। भारतीय मिलोंके लाभका उस समय कोई ठिकाना नहीं था। खाद्य-पदार्थ तथा अन्य आवश्यक वस्तुओंके दाम इतना चढ़ जानेके कारण श्रमजीवियोंकी दशा खराब हो रही थी, मिल-मालिकोंने श्रमजीवियोंकी मजदूरी बढ़ायी अवश्य; किन्तु वह

यथेष्ट नहीं थी। इधर १९१९ में रूसमें जारशाहीका अन्त हुआ और बोलशेविक क्रान्ति हुई। रूसी क्रान्तिका प्रभाव प्रत्येक देशके श्रमजीवियोंपर पड़ा और भारतीय श्रमजीवी भी उससे नहीं बचे। इधर युद्धके उपरान्त जब मन्दीका युग आया, तब भारतीय मिल-मालिकोंने श्रमजीवियोंके बढ़े हुए वेतनको घटाना चाहा। भारतीय श्रमजीवी समुदाय वैसे ही बहुत क्षुब्ध तथा असन्तुष्ट था, मिल-मालिकोंके इस कार्यने तो मानो अग्नि प्रज्वलित कर दी। श्रमजीवी समुदाय जो अभी तक अपने स्वामीको मां-बाप मानता था, उन्हीं मिल-मालिकोंके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। भारतीयोंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि पददलित श्रमजीवी वर्ग अपनी शक्तिको पहचान गया है।

सन् १९२० में मानो हड़तालोंकी एक बाढ़-सी आ गयी। एक वर्षके अन्दर देशमें २०० दो सौसे ऊपर हड़तालें हुईं। कोई धन्धा ऐसा नहीं बचा, जिसमें हड़ताल न हुई हो। १९२६ तथा १९२८ के लगभग हड़तालोंने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। जमशेदपुर, बम्बई, अहमदाबाद तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रोंमें महीनों तक सार्वजनिक हड़ताल रही। ऐसा प्रतीत होने लगा कि भारतीय श्रमजीवी तीव्र विद्रोहकी भावनाको लेकर मिल-मालिकोंसे युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया है। बम्बईकी सार्वजनिक हड़ताल (General Strike) ६ महीने तक चलती रही और श्रमजीवियोंको लगभग ३॥ करोड़ रुपयेकी मजदूरीसे हाथ धोना पड़ा। तदुपरान्त एक जांच-कमेटी बिठलायी गयी, जिसने श्रमजीवियोंके पक्षमें अपना मत दिया। इसी प्रकार जमशेदपुर-ताता-वर्क्समें भी बहुत दिनों तक हड़ताल चलती रही। अहमदाबादमें मजदूर सङ्गठन बहुत दृढ़ था, महात्माजीके नेतृत्वमें श्रमजीवी नेता कुमारी अनुसूया बाई साराबाई तथा श्री शङ्करलालजी बैङ्करने श्रमजीवियोंका ऐसा सुदृढ़ सङ्गठन खड़ा कर दिया कि अहमदाबादके मिल-मालिकोंको विवश होकर श्रमजीवियोंकी मांगोंको सुनना पड़ता है। भारतवर्षमें अहमदाबाद-जैसा सुदृढ़ श्रमजीवी-सङ्गठन कहीं नहीं है। इस बातको रायल-लेबर-कमीशनने भी स्वीकार किया है। साथ ही प्रत्येक जानकार मनुष्य यह भी स्वीकार करेगा कि अन्य औद्योगिक केन्द्रोंसे पिछले सत्ताइस वर्षोंमें अहमदाबादमें अपेक्षाकृत अधिक शान्ति रही है और जब जब श्रमजीवियों तथा मिल-मालिकोंमें कोई मतभेद हुआ, तो वह सरलतासे निपट गया। पिछले बीस वर्षोंमें जब-जब मिल-मालिकों और मजदूरोंका सङ्घर्ष हुआ, तब-तब एक प्रश्न अवश्य उठा। मिल-मालिक उन मजदूर-सभाओंको माननेसे इनकार करते रहे, जिनमें बाहरवाले, जो कि स्वयं मजदूर नहीं हैं, काम करते हों। भारतवर्षमें अभी वह समय दूर है, जब कि मजदूर स्वयं अपनी मजदूर-सभाओंका सञ्चालन करेंगे, अभी तो उन्हें बाहरवालोंकी सहायता लेना अनिवार्य है। आवश्यकता इस बातकी है कि मिल-मालिक मजदूर-सभाओंको सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिसे देखना सीखें, तभी दोनों वर्गोंमें अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

१९२६ से १९२८ तक श्रमजीवी समुदाय अत्यन्त क्षुब्ध रहा; परन्तु इसके उपरान्त भी औद्योगिक केन्द्रोंमें पूर्ण शान्ति स्थापित हो गयी हो, यह बात नहीं थी। श्रमजीवी समुदाय आज भी वैसा ही क्षुब्ध तथा अशान्त बना हुआ है, जैसा कि उस समय था।

इस सम्बन्धमें निम्नलिखित आंकड़े उपयोगी हैं, जिनके देनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

सन् १९२१ से १९३३ तक भारतवर्षमें श्रमजीवियों तथा मिल-मालिकोंके बीच २३१७ झगड़े हुए, इनमेंसे १०९२ झगड़े वस्त्र-व्यवसायमें थे। इन सारे झगड़ोंमें लगभग ३० लाख मजदूरोंने काम करना छोड़ दिया, इन झगड़ोंके कारण ३० लाख श्रमजीवियोंके सब मिलाकर ९३ लाख दिनोंकी हानि हुई। श्रमजीवियोंकी इन हड़तालोंके अवसरपर अधिकतर मजदूरी, बोनस तथा छुट्टियोंके सम्बन्धमें मांगें थीं। इन हड़तालोंमें लगभग ४७८ सफल, ४०९ अर्धसफल तथा १५११ असफल हुईं।

१ अप्रैल १९३१ से ३१ मार्च १९३६ तक केवल बम्बईमें कुल ३३२ हड़तालें हुईं, जिनमें लगभग ३७७,५१७ श्रमजीवियोंने भाग लिया तथा ६,०४०,४०१ कामके दिनोंकी हानि हुई। इन हड़तालोंमें चार हड़तालें ऐसी हुईं, जिनमें एकसे अधिक मिलोंके मजदूर सम्मिलित थे। बम्बईकी हड़तालमें ४९ मिलोंके मजदूरोंने काम छोड़ दिया तथा अहमदाबादकी हड़तालमें ३३ मिलें बन्द रहीं।

सन् १९३२ में सारे भारतवर्षमें ११८ हड़तालें हुईं, जिनमें लगभग १२८,०९९ श्रमजीवियोंने भाग लिया और

१,९२२,४३७ कामके दिनोंकी हानि हुई। सन् १९३३ में १४६ हड़तालें हुई, जिनमें १६४,९३८ श्रमजीवियोंने भाग लिया और २,१६८,९६१ कामके दिनोंकी हानि हुई।

सन् १९३५ तथा १९३६ में देशमें ३०२ हड़तालें हुई, जिनमें २८३,२४७ श्रमजीवियोंने भाग लिया और २,३३१,५१९ कामके दिनोंकी हानि हुई। ३०२ हड़तालोंमेंसे ५६ हड़तालोंमें श्रमजीवियोंको पूर्ण सफलता मिली, ६३ हड़तालों-में आंशिक सफलता मिली और शेष १८३ हड़तालोंमें वे पूर्ण असफल हुए।

ऊपरके आंकड़ोंसे यह भली भांति समझमें आ सकता है कि हड़ताल करना श्रमजीवियोंके लिए बड़ी जोखिमका काम है। अधिकांशमें हड़तालें सफल नहीं होतीं और श्रम-जीवियोंको बहुत कष्ट तथा आर्थिक हानियां उठानी पड़ती हैं। अतएव हड़ताल श्रमजीवियोंका अन्तिम अस्त्र समझा जाना चाहिए और जब तक सब प्रयत्न विफल न हो जावें, मजदूरोंको हड़ताल न करनी चाहिए।

पिछले वर्षोंमें श्रमजीवी-आन्दोलनपर भारतके राष्ट्रीय आन्दोलन तथा समाजवादी कार्यकर्ताओंके विचारोंका विशेष प्रभाव पड़ा है, यही कारण है कि श्रमजीवी-आन्दोलन-ने क्रमशः उग्र रूप धारण कर लिया। इसका यह भी फल हुआ कि नौकरशाही सरकारने भी श्रमजीवी-आन्दोलनको बड़ी ही शङ्कित दृष्टिसे देखना आरम्भ कर दिया। जब-जब श्रमजीवियोंने हड़तालें कीं, तब-तब सरकारकी सहानुभूति मिल-मालिकोंकी ओर ही रही। इधर श्रमजीवी भी नरम तथा गरम दलोंमें विभक्त हो गये, इस कारण श्रमजीवियोंकी शक्तिका ह्रास ही हुआ। फिर भी पिछले वर्षोंमें साधारण मजदूर अपनी दयनीय अवस्थाका अनुभव करके अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा था, अतएव यह बाधायें उसको मिल-मालिकोंका विरोध करनेसे न रोक सकीं और वातावरण बिगड़ता ही गया।

ट्रेड-डिस्प्यूट्स-ऐक्ट पास होनेके पूर्व जब कभी कोई हड़ताल होती थी, तब कोई प्रतिष्ठित नेता मजदूरों और मिल-मालिकोंके बीचमें समझौता करानेकी चेष्टा करता था, कभी-कभी मिल-मालिक और मजदूर किसी एकको पञ्च नियुक्त कर देते थे। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जब श्रमजीवी सुसङ्गठित हों और मिल-मालिक सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार रखते हों। परन्तु इस प्रकारके अनियमित तथा अनिश्चित ढङ्गसे हड़तालोंको रोका नहीं जा सकता; हां, हड़ताल आरम्भ हो जानेके उपरान्त उनको बन्द करवाया जा सकता है।

हड़तालोंको रोकनेके प्रयत्न :—यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि हड़ताल होनेपर फुटकर प्रयत्न तो बराबर किये जाते रहे हैं। जब कोई बड़ी हड़ताल हुई, तो देशके मान्य नेताओंने बीचमें पड़कर समझौता करानेका प्रयत्न किया; परन्तु सङ्गठित रूपमें सन्धि करानेका कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं हुआ। सर्वप्रथम अहमदाबादमें सन्धि करानेका स्थायी प्रबन्ध किया गया और उसमें आशातीत सफलता मिली है। अहमदाबादका मजदूर-सङ्घ भिन्न-भिन्न मिलोंके मजदूरोंकी शिकायतोंको लेकर उन मिलोंके अधि-कारियोंसे बातचीत करता है, यदि उक्त मिलके अधिकारी उन शिकायतोंको दूर नहीं करते, तो मजदूर-सङ्घका मन्त्री सङ्घके बोर्डकी अनुमति लेकर मिल-मालिक-एसोसियेशनको लिखता है और यदि मिल-मालिक-एसोसियेशन भी उस शिकायतको हटानेमें असमर्थता प्रकट करती है अथवा बीचमें पड़नेपर भी यदि वह शिकायत दूर नहीं होती, तो मजदूर-सङ्घ मिल-मालिक-एसोसियेशनसे बातचीत करके मामलेको पञ्चायतके सामने रख देता है। सङ्घ तथा मिल-मालिक-एसोसियेशनने मिलकर एक स्थायी पञ्चायत-बोर्ड नियुक्त कर दिया है। महात्मा गांधी उस स्थायी पञ्चायत-बोर्डमें मजदूरोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, इस कारण दोनों दलोंमें अधिकतर समझौता हो जाता है। यदि पञ्चायत-बोर्ड—जिसमें कि एक मिल-मालिकों तथा एक मजदूरोंका प्रतिनिधि रहता है—किसी प्रश्नपर एकमत नहीं होता, तो फिर एक निष्पक्ष व्यक्तिको चुन लिया जाता है और जो निर्णय वह देता है, वह दोनों पक्षोंको मान्य होता है। ऐसे बहुत-से अवसर आये जब कि महामना मालवीयजी, झावेरी, श्री पटकार तथा अन्य व्यक्तियोंको निर्णायक बनाया गया।

ट्रेड-डिस्प्यूट्स-ऐक्ट :—सन् १९२९ में भारत-सरकारने भी इण्डियन ट्रेड-डिस्प्यूट्स-ऐक्ट पास करके इस समस्याको हल करनेमें सहायक होनेका प्रयत्न किया। उक्त ऐक्टमें निम्नलिखित मुख्य नियम बनाये गये हैं।

यदि कोई हड़ताल चल रही हो अथवा हड़ताल होनेकी सम्भावना हो, तो प्रान्तीय सरकार आज्ञा निकालकर उक्त

झगड़ेको एक कोर्ट आव इनक्वायरी (जांच-अदालत) अथवा समझौता-बोर्डके सामने रख सकती है। जांच-अदालत तथा समझौता-बोर्डकी नियुक्ति प्रान्तीय सरकार करेगी। रेलवे तथा अन्य ऐसे ही विभागोंमें जहां केन्द्रीय सरकारका कर्मचारी मजदूरोंका मालिक हो, वहां यह अधिकार सपरिषद् गवर्नर जनरलको प्राप्त होंगे। यदि किसी झगड़ेके समय दोनों पक्ष (अर्थात् मिल-मालिक और मजदूर) सरकारसे जांच-अदालत अथवा समझौता-बोर्डके सामने अपने मामलेको रखनेकी प्रार्थना करें और यदि सरकारको यह विश्वास हो जावे कि जिन लोगोंने प्रार्थना की है, वे दोनों पक्षोंके बहुमतका प्रतिनिधित्व करते हैं, तो उसे जांच-अदालत अथवा समझौता-बोर्ड अवश्य ही नियुक्त करना होगा।

जांच-अदालतका सभापति तथा सदस्य स्वतन्त्र व्यक्ति नियुक्त किये जावेंगे, जिनका दोनों पक्षोंमेंसे किसीसे सम्बन्ध न हो। जांच-अदालत झगड़ेकी जांच करके रिपोर्ट देगी। समझौता-बोर्डका सभापति स्वतन्त्र व्यक्ति होगा; परन्तु सदस्य दोनों पक्षोंके प्रतिनिधि हो सकते हैं। दोनों पक्षोंके प्रतिनिधि सदस्य उस पक्षकी सम्मतिसे ही नियुक्त किये जावेंगे। समझौता-बोर्डका यह कर्तव्य होगा कि वह दोनों पक्षोंमें सन्धि करा दे। दोनों पक्षोंमें सन्धि करानेके उद्देश्यसे वह झगड़ेके विषयमें पूरी जांच करेगा तथा सरकारको उसकी रिपोर्ट देगा।

बोर्ड तथा अदालतके निम्नलिखित विषयोंमें वही अधिकार होंगे, जो कि दीवानी अदालतोंके होते हैं।

१—किसी व्यक्तिको बुलाना और शपथके साथ उसका बयान लेना।

२—कागजात तथा अन्य आवश्यक सामग्रीको उपस्थित करनेके लिए विवश करना।

३—गवाहोंको हाजिर होनेके लिए आदेश देना।

भारत-सरकारने ऐक्टमें एक धारा इस आशयकी भी बनायी कि यदि कोई व्यक्ति, जो सार्वजनिक हितके धन्धों (उदाहरणार्थ रेल, तार, पोस्ट आफिस, ट्राम, बिजली, वाटर वर्क्स इत्यादि) में काम करता है, बिना १४ दिनके नोटिस दिये हुए हड़ताल कर देगा, तो उसको एक मासका कारावास अथवा पचास रुपये जुर्माना, अथवा दोनों ही सजायें हो सकती हैं। इसी प्रकार यदि कोई मालिक बिना नोटिस दिये द्वारावरोध (Lock out) करके मजदूरोंको काम करनेसे रोकेगा, उसे एक मासका कारावास अथवा एक हजार रुपयेका जुर्माना अथवा दोनों ही सजायें हो सकती हैं।

इसके अतिरिक्त ऐक्टके द्वारा वह हड़तालें गैर-कानूनी घोषित कर दी गयीं, जिनका सम्बन्ध श्रमजीवियोंके हितोंकी रक्षा तथा उनकी उन्नतिके अतिरिक्त और कुछ हो। वह द्वारावरोध भी गैर-कानूनी घोषित कर दिये गये, जिनका सम्बन्ध कि धन्धेसे न हो। ऐसी कोई हड़ताल तथा द्वारावरोध, जो कि जनताको परेशान तथा कष्टमें डालनेके अभिप्रायसे लम्बे समय तक इस कारण किया जावे कि जिससे सरकारको किसी कार्यके करने या न करनेके लिए विवश कर दिया जावे, तो वह हड़ताल अथवा द्वारावरोध (Lock out) भी अनियमित ठहराया जायेगा।

ट्रेड-डिस्प्यूट्स-ऐक्टको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकारका इस ऐक्टके पास करनेसे औद्योगिक कलह मिटानेका इतना अभिप्राय नहीं था, जितना कि शासन-सम्बन्धी कठिनाइयोंको कम करनेसे है। रेल, तार, डाक इत्यादि विभागोंमें एकाएक हड़ताल नहीं हो सकती। १४ दिनका समय बहुत होता है, उस समयमें या तो मजदूरोंका उत्साह ठण्डा हो जायेगा अथवा समझौता हो जायेगा। इसी प्रकार कुछ हड़तालोंको अनियमित ठहराकर सरकारने शासन-सम्बन्धी कठिनाइयोंसे अपनेको बचा लिया। सन् १९३४ में ट्रेड-डिस्प्यूट्स-ऐक्टका संशोधन हुआ और उसके अनुसार जांच-अदालत तथा समझौता-बोर्ड स्थायी बना दिये गये। इस संशोधनकी आवश्यकता इस कारण पड़ी, क्योंकि हड़ताल होनेके समय अदालत नियुक्त करनेमें समय लगता था और स्थिति खराब हो जाती थी।

भारतवर्षमें अधिकतर धन्धोंका सञ्चालन विदेशियोंके हाथमें है, वे लोग भारतीय श्रमजीवियोंसे न तो मिल ही सकते हैं और न उनकी कठिनाइयों, आवश्यकताओं और भावनाओंको ही समझ सकते हैं। जो धन्धे भारतीय पूंजीपतियोंके हाथमें हैं, उनमें भी प्रबन्ध अधिकांशमें विदेशी मैनेजरोंके हाथमें है। जो धन्धे सर्वथा भारतीयों द्वारा सञ्चालित होते हैं, उनमें भाषा तथा प्रान्तीयताकी समस्या रहती है। बम्बईमें पारसी तथा गुजराती मिल-मालिकोंके यहां अधिकतर संयुक्तप्रान्त, राजपूताना तथा

मजदूरोंको काम
कारावास अथवा एक
ही सजायें हो सकती हैं।
वह हड़तालें गैर-कानूनी
श्रमजीवियोंके हितों-
रिक्त और कुछ हो। वह
कर दिये गये, जिनका
कोई हड़ताल तथा द्वारा-
था कष्टमें डालनेके अभि-
किया जावे कि जिससे
न करनेके लिए विवश
थवा द्वारावरोध (Lock
गा।
र्वक पढ़नेसे यह स्पष्ट हो
पास करनेसे औद्योगिक
नहीं था, जितना कि
म करनेसे है। रेल, तार,
हड़ताल नहीं हो सकती।
उस समयमें या तो मजदूरों-
थवा समझौता हो जावेगा।
नियमित ठहराकर सरकारने
अपनेको बचा लिया। सन्
[illegible]
श्रमजीवियोंसे न तो मिल
कठिनाइयों, आवश्यकताओं
सकते हैं। जो धन्धे
उनमें भी प्रबन्ध अधिकांशमें
जो धन्धे सर्वथा
उनमें भाषा तथा प्रान्तीय
बईमें पारसी तथा गुजराती
संयुक्तप्रान्त, राजपूताना

अन्य प्रान्तवासी मजदूर काम करते हैं। ऐसी दशामें स्वामी तथा मजदूरोंमें सम्पर्क स्थापित नहीं हो सकता। इन कठिनाइयोंके अतिरिक्त दो वर्ग हमारे औद्योगिक सङ्गठनमें ऐसे खड़े हो गये हैं, जो कि स्वामी तथा मजदूरोंमें सम्पर्क होने ही नहीं देते। प्रत्येक पाठक जानता है कि हमारे धन्धोंका सञ्चालन-सूत्र मैनेजिङ्ग एजेण्ट्सके हाथोंमें है। बड़े-बड़े व्यवसायियोंने मैनेजिङ्ग एजेण्ट्सकी फर्म बना ली हैं। यह मैनेजिङ्ग एजेण्ट्स नयी मिलोंको स्थापित करते हैं, प्रारम्भिक कार्यवाही करके हिस्से बेच देते हैं और हिस्सेदारोंसे अपनेको मैनेजिङ्ग एजेण्ट्स नियुक्त करवा लेते हैं। यह मैनेजिङ्ग एजेण्ट्स ही मिलोंके कर्ताधर्ता होते हैं। वास्तविक स्वामी अर्थात् हिस्सेदार उनके कार्योंमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यदि शेयर-होल्डर्स मजदूरोंके प्रति अच्छा व्यवहार भी रखना चाहें, तो वे कुछ नहीं कर सकते।

मैनेजिङ्ग एजेण्ट्स तो फिर भी बड़े-बड़े व्यवसायी होते हैं और ये श्रमजीवियोंको सन्तुष्ट तथा शान्त रखनेमें अपना लाभ देखते हैं; परन्तु भारतीय मिलोंमें सरदार अथवा मुकद्दम-के नामसे पुकारा जानेवाला वर्ग मजदूरोंका सबसे भयङ्कर शत्रु, पीड़क तथा उनपर अत्याचार करनेवाला है। बात यह है कि अधिकांशमें मिल-मैनेजर मजदूरोंकी भाषा नहीं जानता और आरम्भमें मजदूरोंकी इतनी कमी थी कि मिल-मैनेजरोंको गांवोंसे मजदूरोंको लानेके लिए इन सरदारोंको रखना पड़ता था। यद्यपि आज मजदूरोंकी कोई कमी नहीं है, परन्तु सरदार मजदूरोंका सर्वेसर्वा बना हुआ है। वही [illegible] नौकर रखता है, वही उन्हें निकलवा देता है, वही [illegible] तरक्की करवा सकता है। सारांशमें मैनेजर सरदारों [illegible] ही श्रमजीवियोंका नियन्त्रण करते हैं। इतनी शक्ति [illegible] सरदार मजदूरोंसे रिश्वत लेता है और उन्हें अनेक [illegible] जाता है। अधिकारियों और मजदूरोंके सम्पर्क [illegible] लिए यह आवश्यक है कि सरदारोंको हटाकर [illegible] एक शिक्षित उचित वेतनवाला लेबर-आफिसर [illegible] जावे। रायल-लेबर-कमीशनने इसी आशयकी [illegible] की है। लेबर आफिसरका कर्तव्य यह होगा कि [illegible] नौकर रखेगा और बिना उसकी सम्मतिके [illegible] अधिकारी न तो किसी मजदूरको निकाल सकेगा और न किसीपर जुर्माना ही कर सकेगा। इस प्रकारसे लेबर-आफिसर श्रमजीवियोंका हित-रक्षक होगा।

इसके अतिरिक्त एक और भी ढङ्ग है, जिससे मिल-मालिकों तथा मजदूरोंमें सद्भावना उत्पन्न हो सकती है। यदि प्रत्येक मिलमें मिल-मालिक एक वर्क-कमेटी स्थापित करें, जिसमें उनके तथा मजदूरोंके प्रतिनिधि रहें और मजदूरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बात इस कमेटीके सामने रख दी जाया करे, तो आपसमें सङ्घर्ष होनेकी सम्भावना कम हो सकती है। परन्तु अभी तक वर्क-कमेटियां अधिक सफल नहीं हुई हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मिल-मालिक इन कमेटियोंको स्थापित करके ट्रेड-यूनियनकी शक्तिको कम करनेका प्रयत्न करते रहे हैं, अतएव मजदूर-नेता इन कमेटियोंको शङ्कित दृष्टिसे देखते हैं। होना यह चाहिए कि मिल-मालिक इन कमेटियोंको सफलतापूर्वक चलानेमें ट्रेड-यूनियनकी सहायता लें।

वास्तवमें औद्योगिक कलहको बिलकुल मिटा देनेका कोई उपाय ही नहीं है। हां, उसको कम करनेका प्रयत्न प्रत्येक राष्ट्रको करना चाहिए। मिल-मालिकोंको यह समझ लेना चाहिए कि जब तक श्रमजीवियोंका सङ्गठन अच्छा नहीं होगा, तब तक औद्योगिक शान्ति नहीं रह सकती। अस्तु, उन्हें श्रमजीवी-सङ्गठनको दृढ़ बनानेमें सहायक होना चाहिए। प्रान्तीय सरकारोंको भी इस ओरसे उदासीन नहीं रहना चाहिए। प्रत्येक प्रान्तको एक लेबर-आफिसर नियुक्त करना चाहिए, जो कि इस समस्याका अध्ययन करता रहे तथा जहां कहीं अशान्तिके चिह्न दृष्टिगोचर हों वहां जाकर समझौता करानेका प्रयत्न करे। मजदूर नेताओंको भी यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि जब तक वे सब प्रकारसे प्रयत्न करके असफल न हो जावें, उन्हें मजदूरोंको हड़ताल करनेकी सलाह न देना चाहिए। क्योंकि हड़ताल करनेसे मजदूरोंको बहुत कष्ट तथा आर्थिक हानि उठानी पड़ती है, साथ ही अधिकतर हड़तालें सफल नहीं होतीं।

अभी तक श्रमजीवी-आन्दोलन निर्बल है और देशमें योग्य तथा सच्चे मजदूर-नेताओंकी कमी है, भविष्यमें जैसे-जैसे आन्दोलन बल पकड़ता जायेगा और पूंजीपतियोंका रुख बदलता जायेगा, वैसे-ही-वैसे औद्योगिक कलह कम होता जायेगा।

ाल बच्चे तथा
। आस्ट्रेलिया-
को आश्रय देने-
हारने हजारोंकी
। है; किन्तु कुछ
में भी कई हजार
संयुक्त प्रान्तीय
करनेका प्रस्ताव
ानेकी समस्यापर
सहायता करनेका
यूथोनिया, ब्रिटिश
। इन निर्वासित
किन्तु यहूदी लोग
कार करते हैं।
जाने कितने और

के समझें;
। जाने;
ती रहती,
पहचाने!

प्रवासी भारतीय और कांग्रेस

श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए०

कांग्रेस इस समय भारतकी सबसे ज्यादा जबरदस्त तथा प्रभावशाली संस्था है और इसका प्रभाव दिनपर दिन बढ़ता ही जा रहा है। कांग्रेसी सरकारें कायम होनेसे पहले भी इसका जोर कम नहीं था।

कांग्रेसका प्रभाव बढ़ाने तथा इसको सङ्गठित रूप देकर इतनी शक्तिशाली बनानेमें भारतीय जनताने खूब सहयोग दिया है और उसका ही बल पाकर कांग्रेसकी वर्तमान धाक जमी हुई है। इसको वर्तमान रूपमें लानेके लिए भारतीयोंने बड़ी-बड़ी कुरबानियां की हैं, अनेक प्रकारके अत्याचार सहे हैं। यों ही जरा-सी देरमें यह इतनी प्रभावशालिनी संस्था नहीं बन गयी।

अब कांग्रेसका अपना एक अलग व्यक्तित्व कायम हो गया है, जिसके निर्माणमें भारतीयोंने, चाहे वे इस भारतके हों या विदेशोंमें रहनेवाले, भारी त्यागका परिचय दिया है। भारतमें बसनेवाली विशाल जनसंख्याने तो इसको सहयोग सब प्रकारसे दिया ही है, पर उन भारतीयोंने भी, जो समुद्र-पार विदेशोंमें रहते हैं, उसको शक्तिशाली बनानेमें भरसक सहयोग दिया था। विदेशोंमें बसनेवाले भारतीय कई प्रकारके हैं। एक तो वे, जो विद्याध्ययन आदि किसी कार्यवश वहां थोड़े समयके लिए गये हैं। दूसरे वे, जो वहां निर्वासन आदि कारणोंसे मजबूर होकर रहते हैं। तीसरे वे हैं, जो भारतसे मजदूर बनाकर उपनिवेशोंमें कार्य करनेके लिए भेजे गये थे। वे वहां बस गये हैं और उनकी संख्या करीब ३० लाखके है। भारतसे बाहर रहनेवाले भारतीयोंमें सबसे अधिक संख्या उन्हीं भारतीयोंकी है, जो मुख्यतः फिजी, दक्षिण-पूर्वीय अफ्रीका, मॉरीशस, ब्रिटिश गायना आदि देशोंमें बस गये हैं। वैसे तो सभी भारतीयों-पर कुछ न कुछ दिक्कतें आती रहती हैं, रङ्ग-भेदके कारण अपमान सहने पड़ते हैं, पर इनपर आपत्तियां प्रायः आया करती हैं। इंगलैण्डमें बसनेवाले भारतीयोंको कभी-कभी ही काले होनेका अनुभव होकर खूनका घूंट पीना पड़ता है, पर इन देशोंमें बसे हुए भारतीयोंको नित्य ही इसका पग-पगपर अनुभव होता है। रेलमें चढ़नेके लिए हिन्दुस्तानियोंके लिए अलग डब्बे नियत हैं, वे प्रत्येक होटलमें नहीं ठहर सकते, प्रत्येक जगह घुस नहीं सकते, उनके बच्चे गोरोंके बच्चोंके साथ एक ही स्कूलमें नहीं पढ़ सकते आदि ऐसी बातें हैं, जो रोज ही हुआ करती हैं। यही नहीं, उनके अधिकारोंपर भी कुठाराघात हुआ करता है। पहले तो उन्हें कोई खास अधिकार प्राप्त नहीं है और जो कुछ है भी उसे उनसे धीरे-धीरे छीना जा रहा है। इस छीना-झपटीके कारण उनकी स्थिति शोचनीय होती जाती है। नये-नये कानून बनाकर उनको इस प्रकार जकड़नेका प्रयत्न किया जा रहा है कि वे फिर आगे बढ़ने न पावें और सब तरहसे दबे हुए रहें।

ये प्रवासी भारतीय जानते हैं कि इनकी आफतोंकी जड़ भारतकी परतन्त्रतामें छिपी है। जब तक भारत आजाद नहीं होता और अपने नागरिकोंके हकोंके लिए दूसरे राष्ट्रोंको मजबूर नहीं करता, उनकी परिस्थितिमें कोई आशाजनक स्थायी परिवर्तन नहीं हो सकता। बहुत चीं-चपड़ करनेसे कुछ दशा यदि सुधरती भी है, तो थोड़े समय बाद फिर ज्योंकी त्यों कर दी जाती है; क्योंकि शक्तिके अभावमें भारतीयोंको गोरोंकी दयापर ही निर्भर रहना पड़ता है। अतएव प्रवासी भारतीय उस दिनकी प्रतीक्षामें हैं, जब भारत स्वतन्त्र हो और उनकी परवाह कर सके, जिससे उनके कष्टोंका अन्त हो और वे स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण कर सकें। भारतकी परतन्त्रताको वे भारतीयोंकी अपेक्षा कम अनुभव नहीं करते, बल्कि अधिक ही करते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि प्रवासी भारतीयोंके प्रति कांग्रेसने अपने इस नवीन शक्तिशाली रूपमें क्या किया? क्या उनके प्रति इसने अपना कर्तव्य पालन किया है या कर रही है?

तीस लाख प्रवासी भारतीयोंके लिए कांग्रेसने अपने नवीन सङ्गठित कार्यालयमें एक विदेशी विभाग खोला है। इस विभागकी ओरसे कांग्रेस प्रयत्नशील है कि सभी प्रवासी भारतीयोंसे इसका सम्बन्ध हो जाय। प्रायः उन सभी

उपनिवेशों आदिसे इसका सम्बन्ध स्थापित हो गया है, जहां भारतवासी निवास करते हैं। वहांकी खबरें इसके कार्यालयमें आती रहती हैं और यह समय-समयपर उनको भारतीय पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भिजवाकर भारतीय जनताको उनकी खैर-खबर देता रहता है। यही नहीं, इस विभागसे एक पत्र भी उपनिवेशोंके पत्रों, भारतीयों और उनकी संस्थाओं आदिके पास भेजा जाता है, जिसमें मुख्य मुख्य भारतीय घटनाओंका समावेश होता है और उनपर राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे टीका-टिप्पणी भी होती है। इससे प्रवासी भारतीयोंको भारतकी राष्ट्रीय प्रगतिका परिचय मिलता रहता है। वास्तवमें कांग्रेसने इस कार्यको करके एक बड़ी आवश्यक कमीको दूर कर दिया। प्रवासी भारतीय भारतीय समाचार पानेके इच्छुक रहते हैं और उन्हें वहांकी बातोंका ठीक-ठीक पता नहीं चल पाता था। उनके देशोंके पत्रोंमें भारतीय खबरें बहुत कम छपा करती हैं और जो छपती भी हैं, उनका उद्देश्य ही दूसरा होता है। इनके द्वारा उनको तथा उन देशोंके गोरोंको बतलाया जाता है कि भारत कैसा असभ्य देश है। भारतीय लड़ाई-झगड़े या साम्प्रदायिक कलहके समाचार ही उनमें प्रायः छपते हैं। और कोई बात छपती है, तो बहुत गलत-सलत। भारतीय पत्र जब वहां पहुंचते हैं, तो उनको भारतकी बातोंका कुछ पता चलता है। इसके अतिरिक्त उनके पास और कोई उपाय न था। हमारे बड़े-बड़े नेताओंकी मृत्युके समाचार उन तक पहुंचते ही नहीं हैं। चिट्ठी-पत्री द्वारा या जब भारतीय पत्र पहुंचते हैं तब उन्हें मालूम होता है।

कांग्रेसके वैदेशिक विभाग द्वारा प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें कुछ छोटी-मोटी पुस्तिकायें भी निकली हैं। और भी कुछ न कुछ लिखा-पढ़ी प्रवासी भारतीयोंसे जारी है।

कांग्रेसके प्रभाव तथा नामके कारण और कोई संस्था इतनी प्रसिद्ध नहीं है। प्रवासी भारतीयोंके लिए वैसे भारतमें ऐसी कई संस्थायें हैं, जो वर्षोंसे, कांग्रेसमें इस विभागके कायम होनेसे पहलेसे, प्रवासी भारतीयोंकी यथाशक्ति सेवा कर रही हैं, परन्तु प्रवासी उनसे भी इतने परिचित नहीं हैं, जितने कांग्रेससे। इसीलिए कांग्रेसका यह विभाग थोड़े-से समयमें ही उनका विश्वास-पात्र बन गया और इसके कार्यालयमें सब प्रकारकी बातें प्रवासी भारतीय भेजने लग गये। और कोई संस्था होती, तो इतना विश्वास-पात्र बननेमें उसे कितने ही वर्ष लगते और तब भी शायद इतना कार्य नहीं कर पाती।

यह सब लिखनेका हमारा तात्पर्य यह दिखाना था कि कांग्रेसको शक्ति प्रदान करनेमें प्रवासी भारतीयोंने मदद की और अब कांग्रेसने उनके लिए भी कुछ करना शुरू कर दिया है। यही नहीं, इससे पहले भी कांग्रेसने उनको भुला नहीं दिया था और बराबर कुछ-न-कुछ कार्य करती रही। पर वह कार्य ऐसा नहीं था, जिससे प्रवासी भारतीयोंकी परिस्थितिपर कोई खास प्रभाव पड़ता। जब कोई खास दिक्कत प्रवासी भाइयोंपर आयी, कांग्रेसने उसको दूर करनेमें सहयोग अवश्य दिया। जञ्जीबार-प्रवासी भारतीयोंकी प्रार्थनापर भारतीय कांग्रेसने लौंगके बहिष्कारको देशव्यापी बनाकर भारतीयोंसे गोरोंको समझौता करनेको मजबूर कर दिया। यदि कांग्रेसने जञ्जीबार-प्रवासी भारतीयोंकी मदद न की होती, तो उनको इतनी सफलता न मिलती और गोरोंकी शोषण-नीतिका शिकार होना पड़ता। इसी प्रकार अन्य मामलोंमें कांग्रेसने उनकी मदद की है। पर कोई ऐसा कार्य इसने अभी तक नहीं किया, जिससे उनकी परिस्थितिमें कोई स्थायी परिवर्तन हो जाता! और न कांग्रेस बराबर इनकी ओरसे चौकन्ना ही रही है। अपने वार्षिक अधिवेशनमें अवश्य यह हर साल एक-दो प्रस्ताव प्रवासी भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले पास कर देती थी।

इस उदासीनताका कारण यह था कि कांग्रेस देशकी लड़ाईमें बराबर लगी हुई थी। इधर-उधर देखनेकी इसे फुरसत न थी। एक बात यह भी थी कि कांग्रेसके कार्यकर्ताओंने समझ लिया था कि प्रवासी भारतीयोंकी दिक्कतोंका अन्त स्वतन्त्रता मिलनेपर ही हो सकता है। बिना स्वतन्त्रताके उनके दुःखोंका अन्त नहीं हो सकता। ऊपरके वर्णनसे मालूम होगा कि परिस्थितिके बदल जानेसे कांग्रेसके रुखमें भी थोड़ा परिवर्तन हो गया है। परन्तु हम यह अब भी नहीं कह सकते कि कांग्रेस अपना कर्तव्य प्रवासी भारतीयोंकी तरफ कार्यरूपेण निभा रही है। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिसे उनके दुःखोंका अन्त तो अवश्य होगा, पर हम इसी आशामें उनकी ओरसे उदास भी नहीं हो सकते। उनकी तरफ कुछ न कुछ ध्यान बराबर बनाये रखनेकी आवश्यकता है,

नहीं तो उनमें
जिनको दूर करने
व्यय होगा। इसन
उनमें कोई नवीन
उनका सुधार तो
बातोंका जो इसीमें
शाकि उनकी परिरि
उनकी दशा सुधार
द्वारा उनपर जो
तभी हो सकेगा, प
स्थायें पैदा हो गय
सुलझा सकते हैं, उ
इस समय प्राय
भेद-भाव बढ़ रहे हैं
चिह्न उत्पन्न होते
पकड़ गये, तो भारत
होंगे। भारतमें ह
पहुंचकर तो यह अ
अभी इसका प्रार
सकता है। अभी ह
है। ये अपनी-अप
या इकोंकी मांग प
अलग-अलग मानप
अच्छा नहीं है। अ
हो भारतीयताके न
जगह उनमें कुछ मा
एक ही सम्प्रद
है। उनकी संगठित
बदलेमें फूटका बो
कायम हो रही हैं।
शीघ्र ही शुरू होनी
प्रवासी भारत
तथा उनको फिर
सबसे उत्तम उपाय
तथा माने हुए
उपनिवेशोंमें भेज

विश्वास-पात्र बननेमें उसे
शायद इतना कार्य नहीं

तात्पर्य यह दिखाना था
प्रवासी भारतीयोंने मदद
नी कुछ करना शुरू कर
ी कांग्रेसने उनका भुला
-कुछ कार्य करती रही।
से प्रवासी भारतीयोंकी
ड़ता। जब कोई खास
ग्रेसने उसको दूर करनेमें
र-प्रवासी भारतीयोंकी
बहिष्कारको देशव्यापी
ता करनेको मजबूर कर
सी भारतीयोंकी मदद
फलता न मिलती और
ना पड़ता। इसी प्रकार
की है। पर कोई ऐसा
ससे उनकी परिस्थितिमें
और न कांग्रेस बराबर
अपने वार्षिक अधि-
क-दो प्रस्ताव प्रवासी
कर देती थी।
था कि कांग्रेस देशकी
र देखनेकी इसे फुरसत
कांग्रेसके कार्यकर्ताओंने
योंकी दिक्कतोंका अन्त
। बिना स्वतन्त्रताके
ता। ऊपरके वर्णनसे
ानेसे कांग्रेसके सबमें
; हम यह अब भी नहीं
प्रवासी भारतीयोंकी
त्रताकी प्राप्तिसे उनके
र हम इसी आशामें
कते। उनकी तरफ
ानेकी आवश्यकता है,

नहीं तो उनमें ऐसी अनेक बुराइयां आ जावेंगी, जिनको दूर करनेमें फिर काफी समय, शक्ति और धन व्यय होगा। इतना ध्यान तो हमें रखना ही होगा कि उनमें कोई नवीन बुराई न आने पावे। जो आ गयी हैं, उनका सुधार तो भारतकी स्वतन्त्रतामें ही है, पर अन्य बातोंका तो इसीमें है कि उनकी खैर-खबर बराबर रखी जावे, ताकि उनकी परिस्थिति अधिक न बिगड़ सके। जहां तक हो, उनकी दशा सुधारनेका ही प्रयत्न होना चाहिए। गोरों द्वारा उनपर जो ज्यादतियां होती हैं, उनका मूलोच्छेदन तो तभी हो सकेगा, पर भारतीयोंमें आपसमें जो नवीन समस्यायें पैदा हो गयी हैं, उनको तो हम आसानीसे अभी सुलझा सकते हैं, उनकी जड़ें भी गहरी नहीं गड़ सकी हैं।

इस समय प्रायः सभी उपनिवेशोंके भारतीयोंमें आपसके भेद-भाव बढ़ रहे हैं। उनमें सङ्कीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके चिह्न उत्पन्न होते नजर आ रहे हैं। यदि ये धीरे-धीरे जोर पकड़ गये, तो भारतके राष्ट्रीय हितोंके लिए बड़े घातक सिद्ध होंगे। भारतमें ही हम इसके मारे परेशान हैं, विदेशोंमें पहुंचकर तो यह और भी अधिक खतरनाक सिद्ध होगी। अभी इसका प्रारम्भ है, आसानीसे इसे दूर किया जा सकता है। अभी तो भारतीयोंमें अपना-अपनापन ही आया है। ये अपनी-अपनी जाति और सम्प्रदायके लिए संरक्षण या हकोंकी मांग पेश करने लगे हैं। अपने गवर्नरों आदिको अलग-अलग मानपत्र भेंट करके अपनी-अपनी मांग पेश करना अच्छा नहीं है। अभी तक तो समस्त भारतीय एक होकर ही भारतीयताके नामपर हकोंकी मांग पेश करते थे। एकाध जगह उनमें कुछ मामूली-सी छीना-झपटी भी हो गयी है।

एक ही सम्प्रदायमें भी मन मुटाव फैलना शुरू हो गया है। उनकी सङ्गठित शक्ति अब लोप हो रही है और इसके बदलेमें फूटका बोलबाला है। अनेक प्रकारकी संस्थायें कायम हो रही हैं। ये प्रवृत्तियां ऐसी हैं, जिनकी रोक-थाम शीघ्र ही शुरू होनी चाहिए।

प्रवासी भारतीयोंका आपसी मनोमालिन्य दूर करनेका तथा उनको फिर प्रेम-बन्धनमें बांधनेका, हमारी रायमें, सबसे उत्तम उपाय यही है कि कांग्रेस अपने कुछ प्रभावशाली तथा माने हुए कार्यकर्ताओंको कुछ समयके लिए कुछ उपनिवेशोंमें भेज दे। ये वहां जाकर चार-छः महीने रहें, उनकी समस्याओंका अध्ययन करें और उनकी दिक्कतोंको दूर करनेका प्रयत्न करें। उनके आपसी झगड़ोंको मिटाकर उनमें भारतीयताके भावोंकी अभिवृद्धि करें। भारतसे दूर रहनेके कारण उनपर जो भली-बुरी बातें असर कर गयी हैं, उनके प्रभावको दूर कर दें। उन्हें बता दें कि यदि वे अपना अस्तित्व कायम रखना चाहते हैं, तो उन्हें आपसी कलह भुलाकर, सबको एक भारतीयताके रङ्गमें रंगकर अपनापन भुलाना होगा। नहीं तो थोड़े समयमें वे उपनिवेशोंमें अपनेको, अपनी सभ्यता आदिको भुलाकर काले अंगरेज बन जावेंगे। इन कार्यकर्ताओंके परिपक्व तजरबेसे वे अवश्य लाभ उठावेंगे। उनके प्रभाव, सुलझे हुए दिमागसे उनका यह गृह-कलह समाप्त हो जावेगा।

उपनिवेशोंके गोरे जो भारतीयोंको कोरा कुली समझते हैं और भारतको केवल कुलियोंका देश, उनकी अक्ल ठिकाने आ जायेगी। जब वे इनको देखेंगे, तब उनकी आंखें खुलेंगी। हमने सुना है कि जब माननीय श्रीनिवास शास्त्री उपनिवेशोंमें भारतीयोंके प्रश्नको हल करने गये थे और उस सिलसिलेमें उन्होंने जो व्याख्यान दिये थे, उनसे वहांके गोरे निवासियोंको भारतकी सभ्यताका पता चला। वे पहले-पहल यह समझे कि भारत कुलियोंका देश नहीं है। वहां एकसे एक विद्वान् आदमी रहते हैं। शास्त्रीजीकी धाराबाही ओजस्विनी वक्तृताओंने जितना प्रवासी भारतीयोंका हित किया, उतना शायद वर्षोंके प्रयत्नसे भी न हो सकता। इसी प्रकार जब श्रीमती नायडू दक्षिण अफ्रीका गयीं और वहां भाषण दिये, तब भी वहांके गोरे उन्हें देखकर दङ्ग रह गये। वे नहीं समझते थे कि भारत ऐसे नर-नारियोंसे परिपूर्ण है।

हां, तो जब ये कांग्रेसके कार्यकर्ता वहां आकर भारतीयोंकी वास्तविक परिस्थितिका अध्ययन करके उन्हें ठीक ढङ्गसे चलावेंगे और अपनी जोरदार वक्तृताओंसे गोरोंके भ्रमोंका निवारण करेंगे, तब प्रवासी भारतीयोंकी साख बढ़ेगी। वे भी कुछ समझेंगे कि उनकी अपनीभी कुछ सभ्यता है, ये सिर्फ कुली ही नहीं हैं, वरन् गोरोंसे भी आगे बढ़े हुए हैं। इससे उन भारतीयोंकी अनेक दिक्कतें हट जावेंगी।

जब ये वहांसे लौटकर आयेंगे, तब उनका ज्ञान उस देशके बारेमें पूर्ण होगा और वे अधिकारपूर्ण बोल तथा लिख सकेंगे। उपनिवेशोंके दूर-दूर-स्थित होनेके कारण

कभी-कभी प्रवासी भारतीयोंके ठीक-ठीक समाचार हमें वहां नहीं मिलते और मिलनेपर भी हम उनकी परिस्थिति-की वास्तविक गम्भीरताका अन्दाज नहीं लगा पाते, क्योंकि हमें वहांकी वस्तुस्थितिका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। इस अज्ञानताके कारण प्रायः भारतीयोंकी दिक्कतें काफी समय तक जनता तथा उसके कार्यकर्ताओंकी दृष्टिसे बाहर ही बनी रहती हैं। वे इनपर तभी प्रभाव डाल पाती हैं, जब उग्र रूप धारण कर चुकी होती हैं। ऐसा कई बार हुआ है कि हम लोगोंको उनकी किसी बातका पता ही नहीं चल पाया और जब मालूम हुआ, तब हम उसमें कुछ करनेके लिए बहुत पिछड़ गये। इन विशेषज्ञोंके रहनेसे उनकी निगाह अपने-अपने उपनिवेशोंके भारतीयोंपर रहेगी और सहसा ही उनपर कोई आपत्तिका पहाड़ नहीं टूट सकेगा। व्यक्ति-गत सम्पर्कमें आ जानेसे उनकी चिट्ठी-पत्री उन उपनिवेशोंसे होती ही रहेगी और वे उनकी गति-विधिके बारेमें जानते समझते रहेंगे।

प्रवासी भारतीय तो सदा ईश्वरसे प्रार्थना किया करते हैं कि कोई भारतीय नेता उनका हाथ आ पहुंचे। जब वे किसीके आनेका सुसंवाद सुनते हैं, तो प्रसन्नताके मारे विह्वल हो जाते हैं। उनकी सब प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते हैं और अपनी दुःख-गाथाओंको सुनाते हैं। वे भारतकी ओर आशाभरी निगाहसे सदैव देखा करते हैं और उनका ऐसा देखना स्वाभाविक भी है।

अभी थोड़े दिन पहले पं० हृदयनाथ कुंजरू फिजी गये थे। वहांके प्रवासी भारतीयोंने आपका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसी प्रकार कुछ दिन पहले सेठ गोविन्द-दास भी पूर्वीय अफ्रीका तथा दक्षिणी अफ्रीकाका चक्कर कर आये थे। कुछ उपनिवेश अब भी बाकी हैं, जैसे मोरीशस, ब्रिटिश गायना आदि। उनमें भी कोई भारतीय नेता भ्रमण कर आवे तो बड़ा अच्छा रहे।

उपनिवेशोंमें जानेवालोंके लिए एक बात जरूरी है कि वे जाकर उनको एक तरहकी ही राय दें। हमारा तात्पर्य इससे यह है कि जो एक नेता बात करे, अन्य कार्यकर्ता जो बादमें वहां जायं, उसकी ताईद करें। उसे काटें नहीं। ऐसा करने-से प्रवासी भारतीयोंकी समस्यायें आसानीसे सुलझ जावेंगी और उन्हें भी कोई दिक्कत न होगी। अलग-अलग राय देनेसे वे स्वयं चक्करमें पड़ जाते हैं और बादमें वहांकी सरकारोंको मौका मिलता है। अभी हाल ही में कुछ उपनि-वेशोंमें ऐसी बातें हो गयी हैं।

भारतमें प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न पार्टीबन्दीसे ऊपर है। उनके बारेमें सभी पार्टियोंकी राय एक-सी ही है। तब क्या अच्छा हो कि वे सब मिलकर उनके लिए एक-सी नीति निर्धारित कर लें और उसीके अनुसार उपनिवेशोंके सरकारी कर्मचारियोंसे भारतीयोंकी वकालत किया करें। ऐसा करनेसे भारतीयोंकी मांगें अधिक जोरदार बनती हैं।

कुछ दिन पहले पूनाकी सर्वेण्ट आव इण्डिया सोसा-इटीके सदस्य श्री कोदण्डरावजी कुछ उपनिवेशोंमें गये थे। वहां उन्होंने भारतीयोंको अंगरेजी सीखनेपर अधिक जोर दिया था और हिन्दी वगैरहकी तरफ उपेक्षा करनेका भाव प्रकट किया था। इससे वहांके भारतीयोंपर बुरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि कुछ लोगोंकी राय है कि अपनापन (भारतीयता) कायम रखनेके लिए अपनी मातृ-भाषा हिन्दीका कायम रखना जरूरी है। श्री रावका उपदेश इसके विरुद्ध था। इसी प्रकार कुछ अन्य बातें भी हैं।

अतः हमारी रायमें सबसे अच्छा कार्य इस समय जो कांग्रेस प्रवासी भारतीयोंके लिए कर सकती है और जो इसका उनके प्रति कर्तव्य भी है, वह यही है कि उनमें कुछ भारतीय नेताओंको भेज दें, जो वहां जाकर भारतीयोंमें एकता उत्पन्न कर दें और उनकी समस्याओंका अध्ययन भी कर आवें। ये नेता जितने अधिक प्रभावशाली होंगे, उतना ही अधिक काम कर सकेंगे। उनको वहां बहुत जल्दी भी नहीं करनी चाहिए, वरन् एक-दो मासका समय लगाकर उनमें जीवन-जागृति उत्पन्न कर देनी चाहिए। उनमें इतना जीवन तो आ ही जाय कि वे क्रियात्मक कार्य करने लगें। उनको बातें बताकर चला आना ही काफी नहीं है, वरन् उनकी कमियोंको दूर करनेके लिए उन्हें समझा-बुझाकर उन कामोंमें जुटा भी देना चाहिए।

यत्रोंकी
इस देशमें जो
हारिकताके
पर बहुत कुछ
किया गया।
पर हमा

कर विचारणी
दूसरे देश
अमेरिका औ
हैं, जो अप
मिक शिक्ष
ही नहीं, जि
शिक्षा प्राप्त